परमपूज्य परमानन्द
(परमहंस जी) महाराज

परमहंस संहिता श्रीमद्भागवत के साधनात्मक सूत्र

श्रीमद्भागवत - कथा

नैमिषारण्य में व्यासनन्दन शुकदेव जी ने
महाराजा परीक्षित और हजारों ऋषियों
को जो कथा सुनाई उसी का
सारांश यह भागवत है।

हमारे प्रकाशन

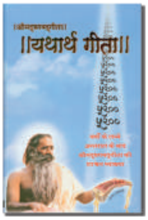

यथार्थ गीता –
'यथार्थ गीता' में श्रीकृष्ण की वाणी के आशय को भली प्रकार यथावत् समझाया है। यह एक कालजयी कृति है।
२८ भाषाओं में

अंग क्यों फड़कते हैं और क्या कहते हैं? –
मानव शरीर के विभिन्न हिस्सों में होने वाले स्पन्दनों का कारण और उसके संकेतों का विश्लेषण किया गया है जो कि साधना में काफी सहायक है।
४ भाषाओं में

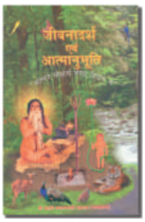

जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति –
पूज्य गुरु परमहंस स्वामी श्रीपरमानन्दजी महाराज के जीवन के वृत्तान्त, उनकी अनुभूतियों एवं उपदेशों को संकलित किया है। साधकों के लिए यह बहुत उपयोगी ग्रन्थ है।
४ भाषाओं में

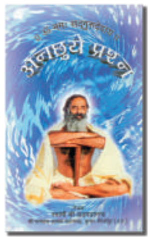

अनछुए प्रश्न –
वर्ण, मूर्तिपूजा, ध्यान, हठ, चक्र-भेदन और योग जैसे विषयों को स्पष्ट कर भ्रमित समाज का मार्गदर्शन किया गया है।
३ भाषाओं में

शंका समाधान –
समाज में प्रचलित सभी कुरीति, रुढ़ि, आडम्बर और अन्धविश्वासों का शमन एवं समाधान किया है।
५ भाषाओं में

एकलव्य का अंगूठा –
शिक्षा-गुरु और सद्‌गुरु में अन्तर बतलाया गया है। शिक्षक, लोकजीवन की कला सिखाते हैं जबकि सद्‌गुरु जीवन में समृद्धि के साथ परमश्रेय की जागृति और उस परमपद की प्राप्ति कराते हैं जिससे पुरुष आवागमन से मुक्त हो जाता है।
३ भाषाओं में

भजन किसका करें?–
लोग गाय, पीपल, देवी-देवताओं, भूत-भवानी की पूजा, धर्म के नाम पर कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इन सभी भ्रान्तियों का निवारण करते हुए स्पष्ट किया गया है कि सनातन धर्म क्या है? इष्ट कौन है? भजन किसका करें व कैसे करें?
६ भाषाओं में

षोडशोपचार पूजन पद्धति –
इस पुस्तम में यह बताया गया है कि एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर कराकर, उस एक परमात्मा का चिन्तन सिखाना ही कर्मकाण्ड है।
३ भाषाओं में

हिन्दी भाषा में

पुनर्जन्म
बौद्धिक स्तर पर यह एक उलझा हुआ प्रश्न है। मनुष्य जन्मा, जीवन-यापन किया; शरीर छूटा, चला भी गया; कुछ समझ ही नहीं पाया कि पुनर्जन्म है या नहीं। किन्तु योगाभ्यास की एक निश्चित ऊँचाई से मनुष्य जब गुजरता है तो उसे स्पष्ट दिखाई देता है कि पुनर्जन्म है? मैं क्या था? आगे कहाँ जाना है?

हृदय
शरीर में हृदय कहाँ है जिसमें परमात्मा का निवास है? हृदय का परिचय तथा परमात्मा को जानने की सम्पूर्ण विधि पर प्रकाश डाला गया है। क्रमोन्नत तीन शरीर हैं– स्थूल, सूक्ष्म और कारण। क्रमशः कारण शरीर के अन्तिम स्तर पर साधन पहुँचता है, तहाँ ईश्वर का निवास है। यह पुस्तिका इन्हीं प्रश्नों का पूर्ण परिचय देती है।

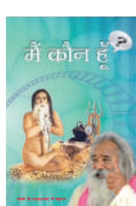

हिन्दी भाषा में

मैं कौन हूँ?
जन्म से ही नाना प्रकार के सम्बन्धों में भ्रम हो जाता है कि मैं कौन हूँ? यह जिज्ञासा यौगिक है। 'वासांसि जीर्णानि.......'– शरीर एक वस्त्र है। यह शरीर छूटा, दूसरा मिला। तामस गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त हुआ पुरुष पशु, कीट-पतंग इत्यादि अधम योनि प्राप्त करता है। राजसी गुण के कार्यकाल में वह मनुष्य तन पाता है। सात्त्विक गुण के कार्यकाल में देव इत्यादि उन्नत योनि पाता है– हर हालत में योनि पाता है। अतः यह प्रश्न ज्यों-का-त्यों है कि मैं कौन हूँ? वास्तव में जब द्रष्टा यह आत्मा अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है तो वही आपका वास्तविक स्वरूप है।

॥ ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ॥

परमहंस संहिता श्रीमद्भागवत के साधनात्मक सूत्र

प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या :
परमपूज्य श्री परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद
स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी
श्री परमहंस आश्रम
ग्राम-पत्रालय-शक्तेषगढ़, जिला-मिर्जापुर, उ.प्र., भारत

रजिस्टर्ड ट्रस्ट का पता:
श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज आश्रम ट्रस्ट
ग्रा.पो. शक्तेषगढ़, चुनार, मिर्जापुर (उ.प्र.) पिनकोड - २३१३०४

ट्रस्ट कार्यालय :
श्री परमहंस आश्रम
गाँव : अनखीर (डिलाइट गार्डन के पास)
सेक्टर-२१सी, सूरजकुंड रोड,
फरीदाबाद, हरियाणा, पिनकोड-१२१००१

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं– 5, मोगरा लेन (रेलवे सब वे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069
फोन – (022) 28255300
ई-मेल – contact@yatharthgeeta.com
वेबसाइट – www.yatharthgeeta.com

© लेखक **श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज**

संस्करण– प्रथम -- जनवरी, सन् 2020 -- 10,000 प्रतियाँ

मूल्य– रु. 50./- मात्र

मुद्रक :

जॅक प्रिण्टर्स प्रा.लि.

जॅक कम्पाऊण्ड, दादोजी कोंडदेव क्रॉस लेन
भायखळा (पूर्व), मुम्बई - 400 027, भारत
फोन नं.- (0091-22) 67343131
वेबसाइट - www.jakprinters.com

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया-चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्त:प्रेरणा

गुरु-वन्दना

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ॥

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वैष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.........भारी।।

॥ ॐ ॥

श्री श्री 1008 श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम 1968 (सन् 1911 ई0)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल 7, वि0सं0 2026, दिनांक 23/05/1969 ई0

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

अनुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ संख्या
–	भूमिका	क-ख
1.	प्रथम स्कन्ध	1-3
2.	द्वितीय स्कन्ध	4-5
3.	तृतीय स्कन्ध	6-12
4.	चतुर्थ स्कन्ध	13-17
5.	पञ्चम स्कन्ध	18-21
6.	षष्ठम स्कन्ध	22-24
7.	सप्तम स्कन्ध	25-27
8.	अष्टम स्कन्ध	28
9.	नवम स्कन्ध	29
10.	दशम स्कन्ध	30-35
11.	एकादश स्कन्ध	36-43
12.	द्वादश स्कन्ध	44-45
–	श्रेष्ठ कौन? गीता या श्रीमद्भागवत?	46-50

॥ ॐ ॥

भूमिका

श्री परमहंस आश्रम जगतानन्द, बरैनी (कछवां) मीरजापुर (उ.प्र.) के निवास-काल सन् 1985 ई. में क्षेत्रीय श्रद्धालु भक्तों ने प्रश्न किया कि हमलोगों के गाँव में श्रीमद्‌भागवत की कथा हो रही है जिसमें व्यवसायपरक साधारण लोग भगवान श्रीकृष्ण की लीला के नाम पर आधुनिक संगीत के साथ नाचते-गाते, उन प्रभु का स्वरूप दर्शाते हैं और कथावाचक थोड़ी-बहुत कोई रोचक कथा कह देते हैं; क्या यही सब कुछ भागवत में है?

वस्तुतः महापुरुष के उपदेश उनके अनुयायी अपनी सूझ-बूझ व मान्यताओं के अनुरूप ग्रहण करते और संकलित करते हैं जिससे समाज महापुरुषों के मूल उपदेशों से इतर पर्व, उत्सव, कर्मकाण्ड, रीति-रिवाज और रुढ़ियों में उलझकर सत्य से दूर चला जाता है। प्राचीन आर्षग्रन्थों के साथ ऐसा ही कुछ होता रहा है।

पूर्वजों के विशाल ज्ञानराशि को महाभारत जैसे ग्रन्थ में सँजोने के पश्चात् भी वेदों के संकलनकर्ता महर्षि व्यास को शान्ति नहीं मिल रही थी। ऋषियों के सुझाव पर उन्होंने भगवत्ता को प्राप्त महापुरुष, जो महाभागवत हो चुके हैं, उनका जीवन-चरित लिखा जिससे उन्हें शान्ति मिली।

भागवत को परमहंस संहिता भी कहा जाता है क्योंकि इसमें परमहंस स्थिति के अनेकानेक संतों का चरित्र-चित्रण लाक्षणिक शैली में लिखा गया है जिनसे विरह-वैराग्यवान साधकों को प्रेरणा मिलती है। इन कथानकों के माध्यम से अन्तर्जगत के रहस्यों को समझाने का प्रयास है इसीलिए कहा जाता है कि वेद का रहस्य पुराणों में है।

व्यास जी द्वारा लेखन के विगत लगभग 6000 वर्षों के अन्तराल में नाटक, नौटंकी, चित्रकथा, चलचित्र, संगीत, इंटरनेट, वाट्सअप इत्यादि प्रचार-प्रसार के बदलते माध्यमों द्वारा महापुरुषों के जीवन-वृत्त के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास होता रहा है किन्तु भौतिक दृष्टि प्रधान होने से वे आध्यात्मिक पक्ष के साथ न्याय नहीं कर पाते। जिन अमलात्मा परमहंसों का जीवन-चरित्र लिखने से व्यास जी को शान्ति मिली, उनकी साधना क्या थी?, उन्होंने समाज को क्या संदेश दिया? – श्रीमद्भागवत के वही साधनात्मक अंश आप सबके समक्ष प्रस्तुत हैं।

– सद्गुरु कृपाश्रयी
स्वामी श्री अड़गड़ानन्द

ॐ

प्रथम स्कन्ध

- **अवतार का अनन्त विधान–** सूत जी ने कहा– जैसे अगाध सरोवर से अनन्त स्रोत निकलते हैं, ठीक इसी प्रकार अनन्त अवतार होते हैं। *(अध्याय 3, श्लोक 27)*

- **भागवत लिपिबद्ध नहीं थी–** सूत जी बोले– शौनकादि ऋषियो! श्री सुकदेव जी जब परीक्षित को यह परमहंस संहिता सुना रहे थे, मैं भी वहाँ बैठा था। जो सुना, अपनी बुद्धि के अनुसार ग्रहण किया, तुम्हें सुना रहा हूँ। *(अध्याय 3, श्लोक 42, 45)*

- **वेद से व्यास को शान्ति नहीं मिली–** नारद ने व्यास से कहा– व्यास जी! आपने वेद का विभाग किया, विशाल महाभारत लिखा, फिर भी आपको संतोष नहीं हुआ। आप साधारण जीवों की भाँति अशान्त क्यों हैं? *(अध्याय 4, श्लोक 19, 25 एवं अध्याय 5, श्लोक 4)* भागवत लिखने से उन्हें शान्ति मिली, वेद से नहीं।

- **संत सेवा–** भागवत में है कि नारद का अन्तर्मन संतों की सेवा, वार्ता तथा उनके जूठन खाने से निर्मल हो गया *(अध्याय 5, श्लोक 25)*। भक्ति चाहनेवालों की यही दिनचर्या है।

- **नारद की वीणा–** नारद ने कहा– भगवान की दी हुई स्वर-वीणा पर मैं तान छेड़ता हूँ *(अध्याय 6, श्लोक 33)*। स्पष्ट है कि यह वीणा लौकिक नहीं थी, बल्कि नाद से उठनेवाली ध्वनि, श्वास-प्रश्वास के तारों में उठनेवाली ब्रह्म की तान थी जैसा कि गुरु महाराज (परमानन्द जी) कहा करते थे– *'रिनिक धिनिक धुन अपने से उठे'*।

- **विपत्ति में भजन सम्भव–** कुन्ती ने कहा– भगवन्! मुझ पर बार-बार विपत्ति पड़े जिससे आपका चिन्तन हो *(अध्याय 8, श्लोक 25)*। मुसीबत

भी कृपा है। धनी लोग भगवान का नाम नहीं लेते। भगवान दीनबन्धु हैं, गरीबों के लिए हैं।

- **यज्ञ निरर्थक–** युधिष्ठिर ने कहा– हिंसाबहुल यज्ञों द्वारा एक भी जीव की हिंसा का प्रायश्चित नहीं हो सकता *(अध्याय 8, श्लोक 52)*। अतः पाप-नाश के लिए संसार में प्रचलित भौतिक यज्ञ उपयोगी नहीं हैं।

- **महाभारत काल में सबसे दीर्घायु सत्यवती थीं न कि भीष्म–** युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर को सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर श्रीकृष्ण जब द्वारका चले तो द्रौपदी, गान्धारी और सत्यवती (महाराज शान्तनु की धर्मपत्नी और भीष्म की विमाता) आदि समस्त राजमहिलाएँ मूर्च्छित सी हो गयीं। *(अध्याय 10, श्लोक 9, 10)*

- **महापुरुष समवर्ती होते हैं–** द्वारका पहुँचकर श्रीकृष्ण सबसे मिले। किसी को प्रणाम, किसी को सिर झुकाया, किसी को हृदय से लगाया तो कहीं हाथ मिलाया (हाथ मिलाने की प्रथा तब से है), किसी को देखकर केवल मुस्कुरा दिया। *(अध्याय 11, श्लोक 22)*

- **जीव एक दूसरे के आहार हैं–** नारद ने युधिष्ठिर से कहा– इस संसार में हाथवालों के लिए बिना हाथवाले आहार हैं, चार पैरवालों के लिए बिना पैरवाले आहार हैं, अधिक बलवालों के लिए कम बलवाले आहार हैं। 'जीवो जीवस्य जीवनम्' *(अध्याय 13, श्लोक 46)*। स्पष्ट है कि मनुष्य ही हाथवाला है। सभी कुछ इसका आहार है चाहे वह दवा बनाकर खाये या खाद बनाकर! मनुष्य सबसे बड़ा खानेवाला है।

- **पृथ्वी का भार–** श्रीकृष्ण जीवनभर पृथ्वी का भार उतारते रहे किन्तु उनके शरीर-त्याग के समय उससे भी बड़ा भार कलियुग आ गया *(अध्याय 15, श्लोक 36)*। वस्तुतः पुरुष पारस होता है। उसकी विभूतियाँ उसके साथ ही सिमट जाती हैं। उसके बाद उसके स्थान व ईंट-पत्थर का महत्व समाप्त हो जाता है।

- **चिन्तन की तुलना में शास्त्रों का अध्ययन व्यर्थ–** धर्म ने परीक्षित से कहा– शास्त्रों के विभिन्न वचनों से मोहित होने के कारण हम उस पुरुष को नहीं जानते जिससे क्लेशों का कारण उत्पन्न होता है *(अध्याय 17, श्लोक 18)*। अतः शास्त्र भ्रम बढ़ाते हैं। उनको पढ़कर क्लेश का कारण जाना नहीं जा सकता। वह तो चिन्तन, भजन के सक्रिय साधन से ही जाना जा सकता है।
- **संत बदला नहीं लेते–** महात्माओं में बदला लेने की क्षमता होती है पर वे दूसरों के द्वारा किये गये अपमानों का बदला नहीं लेते। वे जानते हैं कि भोले प्राणी अपनी वृत्ति से प्रभावित हैं। *(अध्याय 18, श्लोक 48)*
- **भक्त के लिए वर्ण-व्यवस्था या वेशभूषा अनावश्यक–** शुकदेव जी वर्णाश्रम धर्म से पृथक् थे, 'अलक्ष्यलिङ्गो'– वाह्य चिन्हों से रहित थे किन्तु सराहनीय थे *(अध्याय 19, श्लोक 25)*। अतः वास्तविक संत के लिए वर्ण-धर्म या साम्प्रदायिक वेशभूषा भी एक अवरोध है। इसके त्यागने पर ही वह लक्ष्य प्राप्त कर पाता है।
- **संत–** संतों के चरण पवित्र हैं, तीर्थ से बढ़कर हैं।*(अध्याय 19,श्लोक 32)*

❖ ❖ ❖

द्वितीय स्कन्ध

- **साधन–** एकान्त देश का सेवन करते हुए 'ॐ' शब्द का श्वास से जप करें। आसन, श्वास, आसक्ति और इन्द्रियों पर विजय पाकर मन को भगवान के स्थूल रूप (सद्गुरु) में लगाना चाहिए *(अध्याय 1, श्लोक 16, 17, 23)*। अतः ध्यान स्थूल शरीर का होता है।

- **वेद व्यर्थ–** वेदों का वर्णन ही इस प्रकार का है कि लोगों की बुद्धि स्वर्गादि व्यर्थ की वस्तुओं में भटक जाती है। अतः केवल वेदों के भरोसे बैठने से शास्त्र का वास्तविक स्वरूप सामने नहीं आता। यह तो किसी अनुभवी महापुरुष के संरक्षण से समझ में आता है। *(अध्याय 2, श्लोक 2)*

- **देवता व्यर्थ–** स्वरूपस्थ महापुरुष के लिए देवताओं के नियामक काल की भी दाल नहीं गलती। देवता, उनके अधीन रहनेवाले सभी मरणधर्मा हैं। *(अध्याय 2, श्लोक 17)*

- **महाप्रलय–** महाप्रलयकाल में समस्त प्रकृतिरूपी आवरण का भी लय हो जाने पर योगी अपने आनन्दमय प्रवृत्ति के द्वारा परमात्म तत्व में लीन हो जाता है *(अध्याय 2, श्लोक 31)*। स्पष्ट है कि जब योगी परमात्म तत्व में लीन होने की स्थिति में आता है तब महाप्रलय आता है; अतः महाप्रलय योगी के हृदय की वस्तु है न कि कहीं जल भर जाता है।

- **धर्म–** ब्रह्मा तीन बार वेदों का अनुशीलन करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि भगवान के चरण-कमलों में प्रेम ही धर्म है *(अध्याय 2, श्लोक 34)*। अतः त्रिकाल स्नान, पत्थर-पानी-पीपल इत्यादि की पूजा भ्रम है, धर्म नहीं।

- **एक परमात्मा की पूजा का विधान ही सच्चा मार्ग है–** शुकदेव जी ने परीक्षित से कहा– राजन्! छोटी–बड़ी विभिन्न कामनाओं को लेकर

लोग विविध देवताओं को, यक्षों को, गन्धर्वों को, ब्रह्मा को और बहुत से स्थलों पर असुरों को भजते हैं, अदिति के सभी पुत्रों को भजते हैं किन्तु मुक्ति तो उनसे सम्भव नहीं है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि चाहे वह सकामी हो अथवा निष्कामी, एकमात्र भगवान की ही भक्ति करे और भगवद्प्राप्ति के लिए उनके भक्तों (संत, सद्गुरु) की चरण-धूलि सिर पर धरे। *(अध्याय 3, श्लोक 10)*

- **संत की वाणी सत्य–** ब्रह्मा ने कहा– नारद! मैं भगवान के चिन्तन में सतत् लगा रहता हूँ इसलिए मेरी वाणी कभी व्यर्थ नहीं होती। *(अध्याय 6, श्लोक 33)*

- **भगवान बुद्धि का विषय नहीं–** ब्रह्मा जी ने कहा– नारद! हम ब्रह्म को नहीं जानते। अटकल लगाते हैं, बुद्धि से कल्पना करते हैं। केवल महात्मा लोग ही भली-भाँति शान्त किये हुए इन्द्रियों और अन्तःकरण के द्वारा जान पाते हैं *(अध्याय 6, श्लोक 36, 40)*। अतः भगवान बुद्धि का विषय नहीं हैं, महात्मा ही उन्हें जानते हैं।

- **विराट-दर्शन–** भागवत के अध्याय 3 से 6 तक गीता के अध्याय 10 व 11 की तरह भगवान में ही सारी सृष्टि को दर्शाया गया है। केवल वर्तमान महापुरुष ही उस ब्रह्म को संयमित एवं शान्त इन्द्रियोंवाले मन में भली-भाँति अपनी शक्ति के द्वारा दर्शाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिखाया, उधर व्यास की कृपा से उसी विराट-रूप को संजय ने भी देखा।

- **अवतार महात्मा ही हैं–** शंकर व नारद ने काम को जलाया पर क्रोध को वश में नहीं रख सके किन्तु नर-नारायण ने क्रोध का भी दमन किया। दोनों तपस्वी ही थे अतः अवतार महात्मा ही हैं। *(अध्याय 7, श्लोक 7)*

- **समाधि द्वारा भगवद्-प्राप्ति–** समाधि द्वारा ही भगवान की प्राप्ति का विधान है। *(अध्याय 9, श्लोक 36)*

❖ ❖ ❖

तृतीय स्कन्ध

- **महापुरुष को सब नहीं पहचानते–** उद्धव ने कहा– विदुर जी! यह मनुष्य लोक बड़ा अभागा है, विशेषतः यादव लोग, जो भगवान श्रीकृष्ण को सफल यादव के ही रूप में देखते हैं। *(अध्याय 2, श्लोक 8)*

- **श्रीकृष्ण सद्गुरु थे–** उद्धव ने कहा– विदुर जी! मेरे निवेदन पर श्रीकृष्ण ने अपने परम स्वरूप की स्थिति का वर्णन किया। इस प्रकार पूज्यपाद सद्गुरु श्रीकृष्ण से आत्म-तत्व की उपलब्धि कर उनकी परिक्रमा करके मैं यहाँ से बद्रिकाश्रम जा रहा हूँ *(अध्याय 4, श्लोक 19–21)*।

  प्रत्येक महापुरुष को भगवान कहा गया। भगवान एक विशेषण है, उपाधि है। श्रीकृष्ण सद्गुरु थे।

- **गुरु गुरु बना देता है–** श्रीकृष्ण ने कहा– उद्धव मुझसे अणुमात्र भी कम नहीं है क्योंकि वह पूर्ण संयमी है *(अध्याय 4, श्लोक 31)*। गुरु के गुरुत्व को पाकर शिष्य भी गुरु के समान ही है।

- **विदुर व्यासजी के औरस पुत्र थे–** मैत्रेय जी ने कहा– विदुर जी! आप व्यासजी के औरस पुत्र हैं। माण्डव्य ऋषि का श्राप होने के कारण आप विचित्रवीर्य की भोग्य-पत्नी (दासी) के पेट से व्यासजी के वीर्य से पैदा हुए हैं *(अध्याय 5, श्लोक 19–20)*, मंत्र या दृष्टि-निक्षेप से नहीं।

- **ब्रह्म की सृष्टि-रचना–** सर्वशक्तिमान भगवान ने जब देखा कि यह महत्तत्वादि मेरी आदि शक्तियाँ आपस में संगठित न होने के कारण रचना के कार्य में असमर्थ हो रही हैं तब वे काल शक्ति को स्वीकार करके एक साथ ही महत्तत्व अहंकार, पंचभूत, पंचतन्मात्रा तथा मनसहित ग्यारह इन्द्रियों में प्रवेश करके जीवों में सोये हुए अदृष्ट (सोई हुई आत्मा जो दृष्ट नहीं है) को जागृत किया और विलग हुए इन तेइस (23) तत्वों को

अपनी क्रियाशक्ति द्वारा मिला दिया। अपनी प्रेरणा द्वारा इन्हीं तेइस में से सम्पूर्ण अंशों सहित 'विराट' को उत्पन्न किया। *(अ० 6, श्लोक 3-4)*

अर्थात् प्रत्येक आत्मा इन तेइसों की विकृति से अत्यन्त मोह को प्राप्त हुई, सोई हुई है। ऐसे अचेत अन्तःकरण में भगवान स्वयं प्रवेश कर अपने ही स्वरूप अदृष्ट को जागृत कर शनैः-शनैः अपनी ओर बढ़ाते हुए सर्वव्यापक ब्रह्म की स्थिति प्रदान कर देते हैं। इस प्रकार यह सृष्टि अचेत शरीर के अन्दर पहले से ही विद्यमान तत्वों की जागृति है। बाहर कोई सृष्टि नहीं रची जाती। ऐसा ही वर्णन आगे इसी स्कन्ध के अध्याय 9 में भी है।

- **देवताओं के लिए कोई स्थान अपवित्र नहीं–** जब ब्रह्म ने बोलने की इच्छा की तो मुँह, देखने की इच्छा की तो आँखें..... इसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर बना जिनमें स्थान-स्थान पर लिंग, गुदा आदि में भी देवताओं ने अपना स्थान बनाया और प्रसन्नतापूर्वक उनमें रहने लगे। *(अध्याय 6, श्लोक 11–29)*

- **साधन पर चलाने का पुण्य–** विदुर ने कहा– मैत्रेय जी! भगवत्-तत्व के उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता *(अध्याय 7, श्लोक 20, 40, 41)*। अतः सबसे बड़े पुण्यात्मा संत हैं।

- **ब्रह्मा की सृष्टि–** ब्रह्मा ने कहा– भगवन्! आपने अपनी आराधना का स्वरूप बताया है फिर भी लोग इस ओर से उदासीन होकर निषिद्ध कर्मों में लगे रहते हैं। आप मेरी बुद्धि में वह शक्ति दें कि मैं पूर्वकल्प की भाँति सृष्टि कर सकूँ *(अध्याय 9, श्लोक 17)*। जब सारी सृष्टि जीवित है, निषिद्ध कर्मों में लगी है तब ब्रह्मा कौन-सी सृष्टि करने जा रहे हैं? वह मनुष्य को

आराधना की ओर लगाने जा रहे हैं, न कि खरबूजा-तरबूजा बनाने जा रहे हैं।

महाप्रलय काल में सृष्टि जल के अन्तराल में थी। शेषनाग, भगवान अपने वस्त्राभूषण सहित बचे थे। उनकी नाभि से कमलनाल, उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने चारों ओर देखा तो उनके चार मुख हो गये। ब्रह्मा ने अपने उद्गम का पता लगाना चाहा, नाल के सहारे उतर गये, पास तक पहुँच गये, फिर भी कुछ पता नहीं लगा। तब लौटकर उन्होंने तपस्या किया और हृदय में भगवान मिल गये।

सृष्टि तो पहले ही जल में डूबी थी, फिर ब्रह्मा कौन-सी सृष्टि करना चाहते हैं? वास्तव में सारी सृष्टि संसाररूपी समुद्र में विषय-वारि से आप्लावित है। केवल भगवान उस संसार-विषय से निर्लेप हैं। अपनी शक्ति (शेष) पर वे सोये हैं। उनकी अनुकम्पा से ही बुद्धि जागृत होती है। बुद्धि ही ब्रह्मा है। पहले बुद्धि अपने बल से उद्गम-स्थान ब्रह्म को बाहर ढूँढ़ती है, नहीं पाती। फिर भक्ति के द्वारा, तपस्या के द्वारा ध्यान में ढूँढ़ने पर हृदय में पा जाती है। प्राप्ति के साथ ही उस महापुरुष में विकृत समाज को ईश्वरोन्मुख बनाने की जो विधि जागृत होती है, यही ब्रह्मा की सृष्टि है। इसी तीसरे स्कन्ध के अध्याय 20 में भी ब्रह्मा की सृष्टि और उनका रूप द्रष्टव्य है।

- **प्रलय हृदय में होता है, बाहर नहीं–** ब्रह्मा ने अपनी आत्मा अर्थात् नारायण को लक्ष्य कर एक हजार दिव्य वर्षों तक तपस्या किया, तब यह पाया कि जगत की सृष्टि जैसी अब है, वैसी पहले भी थी, और भविष्य में भी रहेगी। *(अध्याय 10, श्लोक 4–7)*

- **मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ–** देवताओं ने कहा– इस मनुष्य-शरीर की बड़ी महिमा है। हम देवता लोग भी इसकी कामना करते हैं। आत्मज्ञान, तत्वज्ञान इस मनुष्य योनि में ही सम्भव है *(अध्याय 15, श्लोक 24)*। अतः मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ योनि है।

- **चलकर देखना अद्भुत है–** सनकादि ने कहा– भगवन्! हमारे पिता ब्रह्मा ने आपकी कथा का वर्णन किया था। उस समय हमारी बुद्धि में आपका रूप आ गया था किन्तु आज जैसा प्रत्यक्ष दर्शन करने को मिला है, वह अद्भुत है *(अध्याय 15, श्लोक 46)*। अतः ब्रह्मस्थित महापुरुष के उपदेशों से भी रूप आता है किन्तु साधना में प्रवेश पाकर जो रूप मिलता है, अद्भुत है।

- **मृत्यु का प्रभाव टालना–** शूकर भगवान ने हिरण्याक्ष की गदा का प्रभाव कुछ तिरछा होकर इस प्रकार बचा लिया जैसे योगसिद्ध पुरुष मृत्यु के आक्रमण को बचा लेते हैं। *(अध्याय 18, श्लोक 15)*

- **ब्रह्मा की सृष्टि–** ब्रह्मा ने सर्वप्रथम भूख से पीड़ित असुरों की सृष्टि की। पैदा होते ही वे ब्रह्मा को ही खाने टूट पड़े। ब्रह्मा ने पहले तो भागना शुरु किया, फिर शरीर-त्याग दिया। इसके पश्चात् ब्रह्मा ने विषयी पुरुषों की सृष्टि की। वे विषय की इच्छा से ब्रह्मा पर झपटे। ब्रह्मा पहले तो भागे, फिर शरीर-त्याग दिया जिससे स्त्री का प्रादुर्भाव हुआ। *(अध्याय 20, श्लोक 19, 20, 23, 29)*

  वास्तव में बुद्धि ही ब्रह्मा है। बुद्धि में जब आसुरी सम्पद् पैदा होती है तो अनन्त तृष्णाएँ बुद्धि में प्रज्ज्वलित होती हैं जो बुद्धि को ही खा जाती हैं। जब बुद्धि विषयोन्मुख होती है तो जगत को नारीमय देखने लगती है– *'अबला बिलोकहिं पुरुष मय जग पुरुष सब अबलामयं।'* उस समय ब्रह्मा अपने पूर्ण स्वरूप से च्युत हो जाते हैं। यही ब्रह्मा का मरना है। यह बुद्धि ब्रह्मा की निम्नतम सीमा है (*अहंकार शिव बुद्धि अज*)। क्रमशः यह ब्रह्मविद्, ब्रह्मविदुर्यान और ब्रह्मविदुरिष्ट सोपानों से उन्नत होकर मूल परमात्मा में विलीन हो जाती है।

- **आत्मदर्शन कराने हेतु अवतार–** कपिल मुनि ने कहा– इस जगत में मेरा यह अवतार लिंग शरीरों से मुक्त करने के लिए हुआ है अर्थात्

रज, वीर्य से पैदा होने वाले शरीरों से मुक्ति दिलाने हेतु हुआ है। कुछ काल से आत्मज्ञान का मार्ग लुप्त हो गया है, इसे मैं प्रशस्त करने आया हूँ *(अध्याय 24, श्लोक 35, 36)*। सिद्ध है कि आत्मदर्शन का मार्ग मनु एवं सप्तर्षियों से पहले भी था, तभी तो लुप्त हुआ।

- **मोक्ष–** आत्मदर्शन ही मोक्ष का हेतु है। अव्यक्त पुरुष ही आत्मा है। *(अध्याय 26, श्लोक 2)*

- **प्रकृति–** पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच तन्मात्रा, पाँच महाभूत और चार अन्तःकरण – इन चौबीस तत्वों के समूह को तथा पचीसवें तत्व काल को विद्वान लोग प्रकृति का कार्य मानते हैं। *(अध्याय 26, श्लोक 11)*

- **वासुदेव, महत्तत्व–** सत्त्वगुण में स्वच्छ, शान्त और भगवान की उपलब्धि का स्थान चित्त ही महत्तत्व है। उसी को वासुदेव कहते हैं *(अध्याय 26, श्लोक 21)*। अर्थात् शान्त, स्वच्छ और स्थिर चित्त ही वासुदेव है।

- **शेषनाग–** भूत (संकल्प), इन्द्रियाँ और अहंकार – इन तीनों के कार्य को पंडितजन साक्षात् संकर्षण नामवाले और सहस्र फनवाले शेषनाग कहते हैं।

- **श्रीकृष्ण एक प्रतीक–** श्रीकृष्ण और उनका परिवार का आध्यात्मिक स्वरूप भी है जिसमें श्रीकृष्ण सद्‌गुरु हैं, मन अनिरुद्ध है, बुद्धि ही प्रद्युम्न है। *(अध्याय 26, श्लोक 28, 30)*

- **विराट पुरुष की जागृति–** पृथक्-पृथक् इन्द्रियों को वश में करने से पृथक्-पृथक् नियमों को साधने से वह विराट पुरुष नहीं उठा। किन्तु जब चित्त के अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ पुरुष ने चित्त को समेटकर हृदय देश में केन्द्रित कर दिया तब वह विराट पुरुष उठ गया *(अध्याय 26, श्लोक 70)*। अर्थात् यह विराट स्वरूप विषयरूपी जल से उठकर खड़ा हो गया। वास्तव में जब आत्मा जागृत होकर योगी के अयुक्त चित्त को स्वयं समेट कर

हृदय-देश में जागृत कर देता है तभी वह विराट पुरुष परमात्मा जागृत होता है।

महाराज जी कहते थे– जब तक आत्मा जागृत होकर हृदय-देश से रथी नहीं हो जाता, तब तक भजनियै नहीं होत है। मन तभी वश में होता है जब प्रभु प्रेरक के रूप में खड़े होकर चलाने लगें।

- **महापुरुष और भगवान की एकता–** कपिल ने कहा कि पुरुष की रुचि जिसमें अधिक रहती है, उसी योनि को प्राप्त होता है। जिसका स्त्रियों में अनुराग होता है, वह स्त्री योनि को प्राप्त करता है और मेरी माया के प्रभाव को तो देखो, कि उस योनि में प्राप्त पुरुष व बच्चे को वह अपना समझने लगता है। वास्तव में पति–पत्नी, पुत्र–गृह इत्यादि नष्ट करने के लिए ही मिले हैं *(अध्याय 31, श्लोक 41, 42)*। यहाँ मेरी माया कहकर कपिल अपने को भगवान बताना चाहते हैं जबकि ध्यान के लिए उन्होंने अपने से पूर्ववाले महापुरुष को बताया – चार भुजावाले नारायण का। शुकदेव ने दो भुजावाले कृष्ण का ध्यान बताया जबकि व्यास जी भी एक भगवान थे। वस्तुतः अपने सद्‌गुरु के ध्यान का विधान है जो भगवत्ता में स्थित हों।

- **स्वधर्म–** परमात्मा की प्रसन्नता ही स्वधर्म है। *(अध्याय 32, श्लोक 5, 6)*

- **ब्रह्मदर्शन–** भक्ति, वैराग्य, निरन्तर योग का अभ्यास, संयम, नियम इत्यादि निर्गुण हैं। मेरे प्रति अविरल श्रद्धा सगुण है। और इन दोनों के सध जाने पर जो स्वरूप मिलता है, उसी का नाम ब्रह्म है *(अध्याय 32, श्लोक 30, 32, 38)*। लोग कहते हैं कि कपिल ने विचारों के द्वारा (इन्द्रिय और मन के द्वारा) संसार को अलग करके स्वरूप को प्राप्त करने का निर्देश दिया किन्तु यहाँ कपिल के शब्दों में अष्टांग योग का साधन और महापुरुष के प्रति अटूट श्रद्धा – दोनों मिलाकर ही स्वरूप की प्राप्ति का विधान है।

- **नाम–जप का महत्व–** जो श्रेष्ठ पुरुष भगवान के नाम का स्मरण करते हैं, उन्होंने समस्त तीर्थ, तप, हवन, सदाचार, वेदों का अध्ययन – सब कुछ कर लिया। *(अध्याय 33, श्लोक 7)*

- **स्त्रियों के लिए घर में रहकर भजन का विधान–** देवहूति ने कर्दम ऋषि के आश्रम में ही रहकर तपस्या की *(अध्याय 33, श्लोक 13)*। अनुसुइया भी अत्रि के आश्रम में ही थी। यही निर्णय अनुसुइया के परमहंस जी (गुरु महाराज) ने भी दिया था कि स्त्रियों के ऊपर पुरुषों के बलात्कार का विघ्न-विशेष है अतः उन्हें घर से दूर एकान्त अकेले में भजन करने में असुविधाएँ हैं।

❖ ❖ ❖

चतुर्थ स्कन्ध

- **ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड का झगड़ा–** अध्याय 2 से 7 तक दक्ष प्रजापति और उनके अनुयायियों की मुठभेड़ आत्मतत्वस्थित शंकर और उनके अनुयायियों से कई जगह हुई – प्रजापति के यज्ञ में, दक्ष के यज्ञ में, सती के आत्मदाह के बाद वीरभद्र के कोप पर किन्तु अन्त में विजय शंकर के तत्वदर्शन को मिली। यहाँ वेदों के अर्थवाद और इन्द्रिय-सुख की निन्दा की गई है। शास्त्र, वेद, ब्राह्मण और कर्मकाण्ड को सनातन मानने का खण्डन किया गया है। इस प्रकरण में आठ भुजावाले एक भगवान का भी वर्णन आया है।

- **शंकर का कैलाश–** यह भारत के किसी भी प्रदेश जैसा ही था। वृक्षों में वहाँ कल्पवृक्ष अधिक था। निवासियों में गन्धर्व, किन्नर, यक्ष आदि में विभक्त जातियाँ थीं जो आज रूपान्तरित हो चुकी हैं। *(अध्याय 6, श्लोक 13–22)*

- **ब्रह्मा की संतान–** ब्रह्मा की प्रथम संतान नारद, ऋभु और सनकादि नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए, गृहस्थ नहीं बने *(अध्याय 8, श्लोक 1–3)*। साथ ही उलझा हुआ परिवार, जिसमें उत्तानपाद, उनकी स्त्री सुनीति, सुरुचि, पुत्र ध्रुव आदि दैवीय सम्पत्ति से युक्त थे जो भक्ति की ओर प्रेरित करते हैं।

  दूसरी ओर ब्रह्मा की संतान जो गृहस्थी चलाती हैं, उनमें उनका पुत्र अधर्म, उसकी पत्नी मृषा, पुत्र दम्भ और कन्या माया थी। यही आसुरी सम्पद् हैं जो संसार में विश्वास दिलाते और संसार में ही पटकते हैं।

  'अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।' बुद्धि ही ब्रह्मा है। बुद्धि के अन्तराल में ही दैवी सम्पद् उत्तानपाद ऊपर परमात्मा की ओर

पैर बढ़ाती है। दूसरी ओर अधर्म इत्यादि आसुरी सम्पद् नीचे संसार के कीट-पतंगादि योनियों में गिराती है। अतः अपनी बुद्धि का भरोसा न कर अपने को महापुरुष के चरणों में समर्पित करें।

- **प्रभु को ढूँढ़ने का स्थान–** उन निर्गुण, अद्वितीय, अविनाशी, नित्य, मुक्त, परमात्मा को अध्यात्म दृष्टि से अपने अन्तःकरण में ढूँढ़ो। *(अध्याय 11, श्लोक 29)*

- **तेरे समान कोई नहीं–** जब ध्रुव का ध्यान इतना सूक्ष्म हो गया कि ध्याता (मन) अन्त में खो गया, ध्येय (इष्टदेव) विलीन हो गये और अपने आपको भूल गया तहाँ विमान आया। ध्रुव को अचल पद मिला। भगवान ने कहा– इस पद को तेरे सिवा कोई नहीं पाया *(अध्याय 12, श्लोक 26)*। प्रत्येक महापुरुष को भगवान प्रायः ऐसा ही कहते हैं।

- **परम भागवत–** भगवत्स्वरूप में प्रतिष्ठित, कृतार्थ महापुरुष की उपाधि भागवत है (अध्याय 13, श्लोक 9)। भगवान के दर्शन से कृतार्थ ध्रुव, नारद इत्यादि परम भागवत थे।

- **साधक को भजन छिपाकर रखना चाहिए–** सभी अच्छे भक्त अन्धे, गूँगे, पागल और मूर्ख की तरह रहते थे। चक्रवर्ती ध्रुव का उत्तराधिकारी उत्कल पागल नहीं थे किन्तु निर्विघ्न भजन के लिए ऐसे प्रतीत होते थे। लोगों ने उसके छोटे भाई वत्सल को राजा बना दिया। *'खोज मारि रथ हाँकहु ताता।'* (मानस) का भी यही रहस्य है।

- **भगवान की खोज बाहर नहीं–** महाराज अंग के गृह त्यागकर चले जाने के बाद लोग उन्हें पृथ्वी पर उसी प्रकार ढूँढ़ने लगे जैसे योग के रहस्य को न जाननेवाले लोग हृदय में स्थित भगवान को बाहर खोजने लगते हैं *(अध्याय 13, श्लोक 48)*। अतः भगवान की खोज योग-साधना द्वारा और हृदय में ही होती है।

- **पृथ्वी का दोहन–** महाराज पृथु ने विभिन्न सामग्री का दोहन बछड़ा बनकर किया *(अध्याय 16, श्लोक 22)*। यहाँ कोई दूध नहीं दुहा गया बल्कि पृथु के राज्य में विभिन्न लोगों ने विभिन्न आविष्कार किये, सभ्यता का प्रचार-प्रसार हुआ।

- **भगवान हृदय में रहते हैं–** मैं तो उन्हीं के हृदय में रहता हूँ जिसके चित्त में समता रहती है। *(अध्याय 20, श्लोक 16)*

- **सनकादि ऋषि निराधार विचरण और चिन्तन करते थे–** *(अध्याय 21, श्लोक 1)* परमहंस महाराज जी कहते थे कि निराधार विचरण के समय साधक को भगवान की महिमा देखने को मिलती है।

- **संत का चरण पवित्र है–** राजा पृथु ने सनकादि ऋषियों से कहा– भगवन्! जिस घर में आप जैसे महापुरुष जल, पुष्प, तृण.... कुछ भी स्वीकार कर लें तो वे दरिद्र होने पर भी धनवान हैं; और जिनमें आपके चरण-कमलों के जल के छींटें नहीं पड़ते वे धनवान होने पर भी दरिद्र ही हैं। वे घर उन वृक्षों के समान हैं जिन पर सर्प लिपटे रहते हैं अर्थात् वे काल-कवलित हैं। *(अध्याय 22, श्लोक 10–11)*

- **धन तथा इन्द्रियों के विषय अनर्थकारी हैं–** धन तथा इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करने से मनुष्य के सभी पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं (अध्याय 22, श्लोक 33)। यहाँ पुरुषार्थ का तात्पर्य भजन है। उसके नष्ट होने पर वह इतर योनियों को प्राप्त होता है।

- **कल्याण–** दुःख के आत्यन्तिक नाश और परमानन्द की प्राप्ति का नाम कल्याण है। *(अध्याय 25, श्लोक 4)*

- **हिंसात्मक यज्ञ से हानि–** नारद ने प्राचीन वर्हि से कहा– तुम्हारे द्वारा यज्ञ में बलि दिए गए सहस्त्रों पशु अपने दर्द को याद कर तुमसे बदला लेने के लिए आकाश में खड़े हैं *(अध्याय 25, श्लोक 6–8)*। न तो पशु का, न तो यज्ञकर्ता का कल्याण हुआ।

- **क्या भागवत यवन आक्रमण के बाद लिखी गई?–** श्रीमद्भागवत में 'यवन' शब्द को देख करके प्रायः यह भ्रम उत्पन्न होता है कि भागवत यवन आक्रमण (सिकन्दर के आक्रमण) के बाद लिखी गयी किन्तु ऐसा नहीं है। वस्तुतः यवन कोई जाति नहीं, प्रकृति में भय का नाम यवन है। यह आध्यात्मिक नामावली है। यम के अनुचर प्रज्वार और कालकन्या इत्यादि थे जिनका उल्लेख अध्याय 28, श्लोक 13 में हुआ है। महाभारत में भी कालयवन का उल्लेख है।

- **पशुबलि का दण्ड–** पुरंजन ने जिन पशुओं की यज्ञ में बलि दी थी, वे सब क्रुद्ध होकर उसे कुठारों से काटने लगे। *(अध्याय 28, श्लोक 26)*

- **वैदिक कर्म अज्ञान है–** नारद जी ने कहा– राजन्! भगवान जब कृपा करते हैं तो मनुष्य वैदिक और लौकिक कर्मों से छुटकारा पा जाता है। राजन्! तुम वैदिक कर्मकाण्ड में लेशमात्र भी लगाव न रखो। जो उन कर्मों में लगाव रखता है, वह केवल अज्ञान के ही वश में है। *(अध्याय 29, श्लोक 46)*

  राजा पुरंजन, उसकी स्त्री और इस कथानक में आया हुआ पाँच फणवाला सर्प – यह सब जीवात्मा की मायिक स्थिति और छूटने के उपायों का रूपक मात्र है।

- **कर्म और विद्या–** कर्म वही है जिससे हरि को प्रसन्न किया जा सके और विद्या भी वही है जिससे भगवान के चरणों में स्नेह जगे। *(अध्याय 29, श्लोक 49)*

- **हरि और गुरु एक दूसरे के पूरक–** जिससे किसी का लेशमात्र भी भय नहीं होता, वही उसका प्रिय आत्मा है। ऐसा जो जानता है, वही ज्ञानी है; और जो ज्ञानी है, वही साक्षात् गुरु और साक्षात् श्री हरि है *(अध्याय 29, श्लोक 51)*। मैत्रेय जी ने विदुर से बताया कि नारद का बताया यह पुरंजन-आख्यानरूपी आत्मज्ञान मैंने अपने गुरुजी से सुना था।

- **एक परमात्मा की पूजा–** जिस प्रकार वृक्ष की जड़ सींचने से पेड़ की शाखा-प्रशाखा, पत्र-पुष्प सभी तृप्त हो जाया करते हैं, ठीक इसी प्रकार देवी-देवताओं की पूजा की अपेक्षा एक परमात्मा की पूजा से सभी कल्याण प्राप्त होते हैं। चाहे लौकिक इच्छा हो चाहे परमगति, दोनों ही सुलभ हैं। *(अध्याय 31, श्लोक 14)*

❖ ❖ ❖

पंचम स्कन्ध

- **घर कब छोड़ें?–** महाराज प्रियव्रत से ब्रह्मा जी ने कहा कि सद्गृहस्थ आश्रम में रहकर काम-क्रोधादि छः शत्रुओं को निर्बल किया जा सकता है किन्तु इनके निर्बल हो जाने पर विवेकी पुरुष विचरण करते हुए इनका अन्त कर देता है *(अध्याय 1, श्लोक 18)*। एक रात से अधिक कहीं न रुकें, बकवादी न बनें, अकेले विचरना चाहिए। पूज्य गुरु महाराज जी कहते थे– शूद्र और वैश्य स्तर की साधना घर पर रहकर की जा सकती है लेकिन इसके बाद जब भगवान कहें, घर छोड़ देना चाहिए।

- **ऋषभदेव सनातन धर्म के महात्मा थे जिनके अनुयायी जैन कहलाने लगे–** महाराज नाभि की प्रार्थना पर भगवान ने उनके घर पुत्ररूप में जन्म लिया *(अध्याय 3, श्लोक 20)*, राज्य किया, संन्यासी हुए, उनका नाम ऋषभदेव हुआ। अतः हिन्दुओं के भगवान ही जैनियों के आराध्य हैं। उन्हें पूजनेवाला नष्ट कैसे होगा? उनके मंदिर में जाना वर्जित क्यों? यह केवल भ्रम मात्र है।

- **नरक और परम धाम के द्वार–** महापुरुषों की सेवा परम धाम का द्वार और स्त्रीसंग नरक का द्वार है। *(अध्याय 5, श्लोक 2)*

- **गदगद गिरा नयन बह नीरा–** भरत नेमपूर्वक भगवान की परिचर्या करने लगे तो प्रेम बढ़ने लगा, हृदय द्रवीभूत होकर निर्मल हो गया *(अध्याय 7, श्लोक 12)*। भजन की आरम्भिक अवस्था में अश्रुपात नहीं होता, कण्ठ अवरुद्ध नहीं होता। केवल प्रयास किया जाता है कि ऐसा हो। भजन करते-करते जब हृदय निर्मल हो जाता है तब यह अश्रुपात 'गदगद गिरा' प्रवाहित हो जाता है। इसके प्रभाव से बुद्धि चरणों के ध्यान में स्थिर होने लगती है। जब ध्यान स्थिर और स्पष्ट होने लगता है तब बुद्धि खो जाती है।

- **भारत देश का नामकरण–** ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर इस अजनाभवर्ष का नाम भारत पड़ा *(अध्याय 8, श्लोक 3)*। वर्ष भूखण्ड को कहते हैं।

- **साधक के लिए दया का विधान नहीं–** भरत ने मृग-शावक पर दया की कि यह शरण आया है, शरणागत की रक्षा धर्म है *(अध्याय 8, श्लोक 9)* किन्तु साधक के लिए कोई कर्तव्य नहीं होता, केवल भजन करना होता है। दया, परोपकार तो पूर्णत्व के बाद महापुरुष से स्वयं निकलने लगते हैं।

- **पूर्वजन्म का ज्ञान किसको?–** भरत पहले जन्म में राजा, दूसरे में मृग, तीसरे में ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर पागल, अवधूत वेश में रहे *(अध्याय 8, श्लोक 27)*। उनकी साधना पूरी थी इसलिए उनके पूर्वजन्म की स्मृति नष्ट नहीं हुई। हर जन्म उन्हें याद था। साधना जब प्रायः पूर्ण हो जाती है और परम चेतन की अनुभूति मात्र शेष रह जाती है, ऐसी अवस्थावाले महापुरुष को पूर्वजन्म का ज्ञान स्वाभाविक बना रहता है।

- **भद्रकाली की पूजा–** अभी तक अर्थात् चौथे स्कन्ध तक भागवत में महापुरुषों के चरित्र का वर्णन मिला जिन्होंने हृदय से ध्यान, संयम, पागलों की तरह निरन्तर चिन्तन करने का उपदेश दिया। यहाँ पहली बार जंगली डाकुओं ने भद्रकाली की प्रतिमा पर मृग-शरीर त्यागकर ब्राह्मण के घर जन्मे जड़ भरत की बलि चढ़ानी चाही लेकिन देवी ने भरत के आत्म-तेज से संतप्त होकर उन डाकुओं को ही मार डाला *(अध्याय 9, श्लोक 12–18)*। अपने ऊपर संकट आता देखकर देवता अपने भक्तों को ही खा जाते हैं।

- **लौकिक, वैदिक कर्म और नीति से कल्याण नहीं होता–** अध्याय 11 में भरत ने बताया कि लौकिक और वैदिक व्यवहार दोनों ही सत्य नहीं है, नश्वर हैं। बारहवें अध्याय में भी भरत ने रहूगण को बताया कि वैदिक कर्म, अन्नादि का दान, अतिथि-सेवा, दीन-सेवा अथवा गृहस्थोचित

धर्मानुष्ठान, स्नान, दान, यज्ञादि के द्वारा भी आत्मज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसकी प्राप्ति के लिए महापुरुषों की चरण-धूलि से अपने को नहलाना होगा *(अध्याय 12, श्लोक 12)*। अतः महापुरुष के बिना आत्मदर्शन नहीं होता।

- **छिपकर भजन करना–** भरत ने छिपाकर भजन किया कि कहीं संगदोष दबा न लें *(अध्याय 12, श्लोक 15)*। छिपाने का अर्थ कहीं झाड़ में अपने को छिपाना नहीं है बल्कि अन्धे, बहरे, गूँगे और मूर्ख के वेश में बदल लेना है जैसा कि अध्याय 9/9 में है जिससे सामान्य लोग न पहचानें। महापुरुष तो पहचान ही लेगा।

- **समुद्रों और नदियों की रचना–** राजा प्रियव्रत के रथ के सात पहियों की लकीर से सात समुद्र बन गये जिनके कारण भूमण्डल में सात द्वीप बने। विचारणीय है कि प्रशान्त महासागर में हिमालय (30000 फीट) डुबा देने पर भी उसके ऊपर 8000 फीट पानी रहेगा तो पहिये कितना नीचे धँसे और रथ कितना बड़ा रहा होगा?

  आर्यावर्त में चार पहाड़ (मंदर, मेरु, सुपार्श्व और कुमुद) हैं। प्रत्येक दस हजार योजन ऊँचा; शिखर पर आम, जामुन, कदम्ब, और वट के एक–एक वृक्ष; प्रत्येक वृक्ष ग्यारह सौ योजन, उतना ही शाखाओं का विस्तार भी; प्रत्येक से फल टपकते हैं जिनके रस से नदियाँ बहती हैं। कुमुद पर्वत पर बरगद वृक्ष से दूध, दही, मधु, अन्न, भोजन, शय्या, वस्त्र, आभूषण सब कुछ मिलता है। कदम्ब के कटोरों से मधु मिलता है। जामुन के फल हाथी जैसे बड़े हैं। उस ऊँचाई पर चारों शिखरों पर चार सरोवर क्रमशः ईख, मधु, दूध और मीठे जल से भरे हैं। इतने ऊँचे पहाड़ पर बर्फ होनी चाहिए, वृक्ष या सरोवर नहीं।

  वस्तुतः मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार जब कूटस्थ हो जाते हैं, तब यही अचल पहाड़ हैं। स्वर (श्वास) वरिष्ठ अवस्था में ईख के रस अर्थात् एकत्व के रस, अनुराग की मधुरता (मधु), ईश्वरीय गुण (दुग्ध)

से लबालब तथा रामभक्तिरूपी मीठे जल से भरपूर सरोवर हैं। *'रामभगति जल मम मन मीना।'* स्वर के अन्तराल में ही यह सभी गुण भरे हुए हैं।

- **भारत कर्मभूमि–** पृथ्वी के नौ खण्डों में भारत कर्मभूमि है *(अध्याय 17, श्लोक 11)*; शेष आठ भोग भोगने के लिए हैं जहाँ लोग बिना मर्यादा के रहते और स्वच्छन्द विचरण करते हैं। वास्तविक कर्म आराधना है।

- **समुद्र के प्रकार–** भारत के चारो ओर खारा समुद्र, इसके बाद इक्षुरस का समुद्र, उसके बाद मदिरा समुद्र, तदनन्तर घृत समुद्र, इसके बाद चारो ओर दूध समुद्र, फिर मट्ठा समुद्र, फिर मीठे जल का समुद्र है। हर भूखण्ड भारत से उत्तरोत्तर दूने क्षेत्रफल के हैं और सब मिलाकर पचास करोड़ योजन क्षेत्रफल है *(अध्याय 20, श्लोक 2)* जबकि वास्तव में समुद्र नमकीन, पतला या गाढ़ा हो सकता है जैसे कैस्पियन सागर इतना गाढ़ा है कि आप डूब नहीं सकते।

वस्तुतः यह पुराणों की रोचक लाक्षणिक शैली है जिसका आशय केवल इतना है कि महाराजा प्रियव्रत ने समुद्र की नाप-जोख की। जिस तरह महाराजा पृथु ने पृथ्वी को गाय बनाकर दुहा अर्थात् कृषि-सम्बन्धी आविष्कार किये। समुद्र के समीप कहीं उग्र स्वभाव के लोग मिले तो खारा समुद्र, कहीं मधुर व्यवहार वाले मिले तो इक्षुरस का समुद्र इत्यादि।

- **पृथ्वी और सूर्य–** पृथ्वी पर दस-दस हजार योजन के कई पहाड़ हैं जबकि सूर्य का आयतन मात्र दस हजार योजन है *(अध्याय 24, श्लोक 2)*। वास्तविकता तो यह है कि सूर्य पृथ्वी से 13 लाख गुना बड़ा है।

- **शेषनाग–** पृथ्वी से तीस हजार योजन पर भगवान की वैष्णवी शक्ति संकर्षण है। यह द्रष्टा-दृश्य को आकर्षित कर एक कर देता है। इस पर पृथ्वी सरसों के दाने की तरह टिकी है *(अध्याय 25, श्लोक 22)*। वस्तुतः यह आकर्षण की शक्ति है जो कुण्डलाकार सर्वत्र फैली है।

❖ ❖ ❖

षष्ठम स्कन्ध

- **प्रायश्चित और शुद्धि–** मनुष्य मन, वाणी और कर्म से जो पाप करता है, यदि इसका प्रायश्चित इसी शरीर से नहीं कर लेता तो नरक में जाता है *(अध्याय 1, श्लोक 7)*। पाँचवें स्कन्ध के 26वें अध्याय के 38वें श्लोक में बताया कि पुराणों में चौदहों भुवन का वर्णन इतना ही है अर्थात् संसार में इतने प्रकार के दण्ड भोगने पड़ते हैं, नरक यहीं है।

- **पापी पुरुषों की शुद्धि संत-सेवा से–** पापियों की जैसी शुद्धि भगवान को आत्म-समर्पण करने से और उनके भक्तों की सेवा करने से होती है, वैसी तपस्या आदि के द्वारा कदापि नहीं होती *(अध्याय 1, श्लोक 16)* अर्थात् एक ईश्वर के प्रति समर्पण और महापुरुष की सेवा अनिवार्य है।

- **अजामिल मरा नहीं, उसने अनुभव देखा था–** अजामिल पहले निर्दोष साधक था किन्तु दुष्टों और वेश्या के संगदोष से पतित हो गया। यमदूतों से हाथ से छूटना आदि दृश्य उसे अचेतावस्था में दिखाई पड़ वह मरा नहीं था, 'मृयमाण' *(अध्याय 2, श्लोक 13)*–मरणासन्न ही था। भगवान के पार्षदों ने उसे मृत्यु से बचा लिया। वह हरिद्वार जाकर भजन करने लगा और अन्त में भगवान के पार्षदों के रूप में उन्हीं के धाम चला गया।

- **वेद से कल्याण नहीं–** अध्याय 3/25 में है कि प्रायः लोग वेद के वाक्यों में अनुरक्त रहते हैं और सुगम विधि नाम जप नहीं करते। जो दुष्ट नरक के द्वार-स्वरूप घर-गृहस्थी का बोझ ढोते हैं, उन्हीं को बार-बार मुझ यमराज के पास लाओ। *(अध्याय 3, श्लोक 28)*

- **नारद का दक्ष-पुत्रों को उपदेश–** हर्यश्व नामक दक्ष के दस हजार पुत्रों को नारद ने एक पहेली द्वारा उपदेश दिया कि पहले इस पहेली को सुलझा लो तो सृष्टि कार्य में लगो।

एक ऐसा देश है जिसमें एक ही पुरुष है (ईश्वर), एक ऐसा बिल है जिससे बाहर निकलने का रास्ता नहीं है (ब्रह्मस्थिति), एक ऐसी स्त्री है जो बहुरूपिणी है (बुद्धि), एक ऐसा पुरुष है जो व्यभिचारिणी का पति है (बुद्धि में फँसा पुरुष), एक ऐसी नदी है जो आगे-पीछे दोनों ओर बहती है (माया), एक ऐसा घर है जो पच्चीस पदार्थों से बना है (शरीर), एक ऐसा हंस है जिसकी करनी विचित्र है (भगवत्-उपदेश), एक ऐसा चक्र है जो छूरे और वज्र से बना है और अपने आप घूमता रहता है (काल)। दक्ष के ये पुत्र इस पहेली को सुलझाते-सुलझाते निवृत्ति-परायण सन्त बन गये, सृष्टि करने में रुचि नहीं लिये। *(अध्याय 7)*

- **नारायण कवच–** अध्याय 8 में वर्णित नारायण कवच का आशय है कि अपने आपको उस प्रभु को समर्पित कर दो।

- **संत देवताओं के भी रक्षक–** संतों ने देवताओं की पूजा-प्रार्थना कहीं नहीं की बल्कि देवताओं ने विपत्ति के समय ब्रह्मा के समझाने पर संतों की शरण ग्रहण किया। अध्याय 7 व 8 में असुरों ने देवों को जीता तो देवताओं की प्रार्थना पर महर्षि विश्वरूप उनके पुरोहित बने। वृत्रासुर से हारने पर भगवान के कहने पर देवता महात्मा दधीचि की शरण में गये। *(अध्याय 9, श्लोक 51)*

- **देवता पूज्य नहीं–** राजा चित्रकेतु ने भगवान से कहा कि भगवन्! जो नरपशु केवल विषय भोग ही चाहते हैं, वे आपका भजन न कर आपकी विभूतिस्वरूप बहुत सी देवताओं की पूजा करते हैं। जैसे राजकुल के नाश होने पर उनके अनुयायियों की जीविका का ह्रास हो जाता है, उसी प्रकार क्षुद्र उपास्य देवों के दिये भोग भी उनके नष्ट होने पर नष्ट हो जाते हैं *(अध्याय 16, श्लोक 38)* अतः देवपूजा विषय-लंपटों के लिए है।

- **देवता अड़चन मात्र–** कश्यप की रानी अदिति से सूर्य और दिति से असुर हुए। हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष दोनों पुत्रों के मरने पर दिति की

प्रार्थना पर कश्यप ने उसे इन्द्रजयी पुत्र की प्राप्ति का वरदान दिया किन्तु पुत्र-प्राप्ति के लिए गाय, ब्राह्मण, लक्ष्मी, नारायण, सुहागिन स्त्रियों और पति इत्यादि की पूजा के नियम बताये, पचासों विधि-निषेध बताये जिसमें एक बार दिन में सोने से पूजा खण्डित हो गयी। *(अध्याय 18)*

नोट– साधक दिन में न सोये, यह पूजा नहीं, अड़चन थी जिसमें उलझकर दिति की कामना पूर्ण नहीं हुई।

❖ ❖ ❖

सप्तम स्कन्ध

- **भगवान के मिलने का स्थान–** भगवान सर्वत्र हैं किन्तु विचारशील पुरुष अपने हृदय–देश में मन और इन्द्रियों का मन्थन करके उन्हें प्राप्त कर लेते हैं। *(प्रथम अध्याय)*

- **मनुष्य की आयु–** हर युग के शास्त्र में मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी गयी है *(अध्याय 6, श्लोक 6)*। जहाँ लाख, हजार वर्ष की आयु है वहाँ केवल उतने वर्ष से वृत्तियों की जागृति और अन्त का चित्रण है। भजन जब से आरम्भ होकर जब तक पूर्ण होता है इनके बीच सैकड़ों शरीर बदलने पड़ते हैं। केवल शरीररूपी वस्त्र ही बदलता है, इष्टमयी वृत्ति का उत्थान क्रमशः होता रहता है। इस प्रकार दैवी और आसुरी दोनों वृत्तियों की आयु हजार-लाख वर्ष तक पहुँच जाती है।

- **जो दोगे, वही पाओगे–** भक्त जो भी सामान भगवान को देता है, भगवान वही उसे देते हैं *(अध्याय 9, श्लोक 11)*। भक्त कहता है– आप शाश्वत, सनातन, अजर, अमर हैं। ईश्वरानुभूति के साथ यह सब गुण उस भक्त में आ जाते हैं।

- **वरदान माँगना कमजोरी है–** नरसिंह भगवान से प्रह्लाद ने कहा कि वर माँगना बनियों की तरह लेना-देना है *(अध्याय 10, श्लोक 4)*। वास्तव में सेवक वही है जो सेवा के बदले स्वामी से कोई कामना न करे। मीरा कहती थीं– *'श्याम मोहिं चाकर राखो जी।'* चाकर वह नौकर है जिसे सेवा के बदले कुछ दिया नहीं जाता।

- **इक्कीस पीढ़ी का तरना–** भगवान ने प्रह्लाद से कहा कि तुम्हारे पिता भी तर गये क्योंकि जिस कुल में कोई भगवान का भक्त होता है, उसकी इक्कीस पीढ़ी तर जाती है *(अध्याय 10, श्लोक 18)*। गुरु महाराज (परमहंस जी) भी यही कहते थे।

- **शंकर की त्रिपुर पर विजय–** भगवान शंकर ने त्रिपुर पर विजय के लिए अन्तिम तैयारी की, तब उन्होंने धर्म का रथ, ज्ञान को सारथी, वैराग्य की ध्वजा, ऐश्वर्य के घोड़े, तपस्या का धनुष, विद्या का कवच, प्रक्रिया का बाण और अन्यान्य शक्तियों से विभिन्न शस्त्रों का निर्माण किया और उसी पर आरुढ़ होकर त्रिपुर का विनाश कर दिया। *(अध्याय 10, श्लोक 66)*

  यह त्रिभुवन (तीनों शरीर) ही त्रिपुर है जो एक दूसरे से बलिष्ठ हैं, चिदाकाश में अदृश्य विचरते हैं। शंकाओं से उपराम साधक शंकर ही विवेक, वैराग्य आदि से इन तीनों शरीरों का अंत कर पाता है।

- **स्नान–** नहाना-धोना शुद्धि नहीं है। अध्याय 13/12 में है कि दत्तात्रेय के शरीर की ज्योति धूल-धूसरित होने से ढँकी हुई थी।

- **गृहस्थ क्या करें?–** नारद ने कहा– युधिष्ठिर! गृहस्थ को चाहिए कि सन्त-महापुरुषों की सेवा करे, उनके साथ रहे और शनैः-शनैः परिवार की आसक्ति का त्याग करे। *(अध्याय 14, श्लोक 2–4)*

- **गुरुदेव की भक्ति–** नारद ने कहा– युधिष्ठिर! श्री गुरुदेव की भक्ति द्वारा साधक सभी दोषों पर विजय प्राप्त कर लेता है। हृदय में ज्ञान का दीपक जलानेवाले गुरुदेव साक्षात् भगवान ही हैं। जो दुर्बुद्धि पुरुष उन्हें मनुष्य समझता है, उसका समस्त शास्त्र-श्रवण हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बड़े-बड़े योगीश्वर जिनके चरण-कमलों का अनुसंधान करते हैं, प्रकृति और पुरुष के अधीश्वर वे भगवान ही स्वयं गुरुदेव के रूप में प्रकट हैं। इन्हें लोग भ्रम से मनुष्य मानते हैं। *(अध्याय 15, श्लोक 25–27)*

- **मन की दृढ़ता–** जो संन्यासी पहले गृहस्थ आश्रम का त्यागकर बाद में धर्म, अर्थ, काम का सेवन करता है, वह अपना वमन खानेवाला कुत्ता है। *(अध्याय 15, श्लोक 36)*

कर्मत्यागी गृहस्थ, व्रतत्यागी ब्रह्मचारी, गाँव में रहनेवाला वानप्रस्थ तपस्वी, इन्द्रियलोलुप संन्यासी – ये चारों निज आश्रम के कलंक हैं। *(अध्याय 15, श्लोक 38–39)*

पूज्य परमहंस महाराज जी कहा करते थे कि गृहस्थ की भूल भगवान क्षमा कर देते हैं पर साधु होने के बाद क्षमा नहीं मिलती।

❖ ❖ ❖

अष्टम स्कन्ध

- **मनवन्तर–** स्वायंभु, स्वारोचिष, उत्तम, तामस इत्यादि मनु जिन्होंने परमात्मा को पाया, मनवन्तर कहलाते हैं *(अध्याय 1)*। ईश्वर से अनुरक्त मन ही मनु है।

- **गरुड़ भगवान से भी बलवान–** जिस मन्दराचल को देवता और दानव उठा नहीं पा रहे थे, भगवान उस पहाड़ को लेकर गरुड़ पर बैठ गये *(अध्याय 6, श्लोक 38)*। प्रतीत होता है कि गरुड़ भगवान से भी बलवान थे।

- **कच्छप की लम्बाई–** मन्दराचल के नीचे कच्छप भगवान की पीठ एक लाख योजन थी *(अध्याय 7, श्लोक 9)*। मन्दराचल मध्य प्रदेश से दक्षिण की ओर फैला है। पृथ्वी की परिधि 40 हजार किलोमीटर और व्यास 12 हजार 8 सौ किलोमीटर है तब यह बारह लाख किलोमीटर का कच्छप किस समुद्र में रहा होगा?

- **विष की उत्पत्ति–** सागर-मंथन के विष की तीन बूँदें शंकर के पीते समय गिर गयीं। उसी से सर्प, बिच्छू, अन्य विषैले जीव-जन्तु और कुछ वनस्पतियाँ जहरीली हो गयीं *(अध्याय 7, श्लोक 46)* पर उससे भी पहले नाग वासुकी में जहर कहाँ से आ गया जिसकी फुंकार से देवता झुलसे जा रहे थे।

❖ ❖ ❖

नवम स्कन्ध

- **राम की आराधना–** परीक्षित! भगवान राम ने गुरु वशिष्ठ को अपना आचार्य बनाकर उत्तम सामग्रियों से युक्त यज्ञों द्वारा अपने आप ही अपने सर्वदेवस्वरूप स्वयंप्रकाश आत्मा का यजन किया। भगवान श्रीराम ब्राह्मणों को ही अपना इष्टदेव मानते थे। *(अध्याय 11)*

- **ब्रह्मा से पहले भी सृष्टि–** ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और उनके पुत्र चन्द्रमा ने त्रिलोकी पर विजय किया, राजसूय यज्ञ किया *(अध्याय 14)*। स्पष्ट है कि ब्रह्मा से पहले भी सृष्टि थी।

- **काम की प्रबलता–** एक बार बृहस्पति ने अपने छोटे भाई उतथ्य की गर्भिणी स्त्री को सहवास के लिए आमन्त्रित किया। उसके अस्वीकार करने पर कामातुर देवगुरु ने उससे बलात्कार किया। गर्भस्थ बालक दीर्घतमा ने विरोध किया तो बृहस्पति ने श्राप भी दिया कि तुम्हारी आँखें फूट जायँ। इस सहवास से दीर्घतमा और भरद्वाज पैदा हुए। *(अध्याय 20)*

  इस कथानक से स्पष्ट है कि भगवत्पथ में काम अत्यन्त दुर्धर्ष शत्रु है। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने भी कामरूपी शत्रु को सर्वप्रथम समाप्त करने का निर्देश दिया।

- **महात्माओं के उपदेश से परम पद–** देवावृध और उनके पुत्र बभ्रु से उपदेश लेकर चौदह हजार पैंसठ मनुष्य परम पद को प्राप्त कर चुके थे *(अध्याय 24, श्लोक 10–11)*। दो–चार–दस तक तो सभी महात्माओं के उपदेश से हो जाते हैं। बुद्ध ने अपने जीवन-काल में पाँच सौ अर्हत बनाये। यह संख्या सबसे अधिक है।

❖ ❖ ❖

दशम स्कन्ध

- **श्रीकृष्ण की साधना–** श्रीकृष्ण ने यजन करके अपने ही आत्मस्वरूप को प्राप्त किया। *(अध्याय 1)*
- **संतों के करीब गरीब लोग–** गरीबों में धनी लोगों की तुलना में विषय-वासनाएँ और उनके साधन सीमित होते हैं जबकि धनी लोगों में वासनाओं के अनेक स्रोत होते हैं। वे उसी के मद में रहते हैं इसीलिए समदर्शी होते हुए भी सन्त गरीबों को अधिक अपनाते हैं। *(अध्याय 10, श्लोक 17)*
- **प्रलय के बारे में ब्रह्मा जी–** ब्रह्मा ने कहा– जो पुरुष इस आत्मा को परमात्मा के रूप में नहीं जानता, उन्हें इस अज्ञान के कारण ही नामरूपात्मक प्रपंच के उत्पत्ति का भ्रम हो जाता है परन्तु ज्ञान होते ही आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है *(अध्याय 14, श्लोक 25)*। अतः प्रलय हृदय-देश में होता है। जन्म-मृत्यु के कारणों का लय होना प्रलय है।
- **श्रीकृष्ण ब्राह्मण बने–** गर्गाचार्य से व्रतबंध संस्कार कराकर श्रीकृष्ण और बलराम द्विज हो गये। *(अध्याय 45, श्लोक 29)*
- **संत परम पवित्र–** केवल जल के तीर्थ ही तीर्थ नहीं हैं। पत्थर व मिट्टी की मूर्तियाँ दीर्घकाल तक सेवा करने से पवित्र करते हैं किन्तु सन्त पुरुष दर्शन मात्र से पवित्र कर देते हैं। *(अध्याय 48, श्लोक 31)*
- **स्त्री-पुरुष सहवासियों के लिए भगवान नहीं–** रुक्मिणी ने भगवान की स्तुति करते हुए कहा कि जो लोग स्त्री-पुरुष के संभोग से प्राप्त होनेवाले सुख या दुःख के वशीभूत हैं, वे कदापि आपके सम्बन्ध के योग्य नहीं हैं। *(अध्याय 60, श्लोक 38)*

- **विवाह लौकिक व्यवस्था–** रुक्म की बहन का विवाह श्रीकृष्ण से हुआ। रुक्म की पुत्री रुक्मवती से कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह हुआ। रुक्म की पौत्री रोचना का विवाह प्रद्युम्न के लड़के अनिरुद्ध से हुआ *(अध्याय 61, श्लोक 25)*। आज मामा की लड़की बहन मानी जाती है, उससे विवाह निन्दनीय है। कभी गर्भ गिराने पर मृत्युदण्ड था, आज परिवार-नियोजन पर पुरस्कार मिलता है।

- **श्रीकृष्ण के भजन का समय–** श्रीकृष्ण प्रतिदिन ब्राह्म मूहूर्त में उठ जाया करते थे, तत्पश्चात् हाथ-मुँह धोकर अपने मायातीत आत्म-स्वरूप का ध्यान करते थे। उस ध्यान में उनका रोम-रोम खिल जाता था। *(अध्याय 70, श्लोक 46)*

  इस क्रिया के पश्चात् वे स्नान करते थे, उत्तम वस्त्र धारण करते थे, शीशे में मुँह देखते थे, फिर नित्य के कार्यों में लग जाते थे। अतः भजन-ध्यान में स्नान करके बैठने का कोई विधान नहीं था। स्नान शारीरिक शुद्धि है, भजन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

- **गुरु-सेवा–** सुदामा से श्रीकृष्ण ने कहा– मित्र! मैं सद्गृहस्थ धर्म, वेदाध्ययन, वानप्रस्थ की तपस्या से भी उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ जितना की गुरुसेवा से होता हूँ *(अध्याय 80, श्लोक 34)*। जब हम तूफानी हवा में लकड़ी हेतु गये थे, गुरु हमें खोजते आये, आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों को सम्पूर्ण विद्या आ जायेगी *(अध्याय 80, श्लोक 42)* अतः विद्या गुरु से मिलती है।

- **भागवत में राधा का नाम नहीं आया है–** न तो ब्रज छोड़ते समय और न सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में ही राधा का कहीं वर्णन है। *(अध्याय 82)*

- **विवाह सामाजिक व्यवस्था–** कृष्ण की पटरानी भद्रा ने द्रौपदी को बताया कि कृष्ण हमारे मामा के लड़के हैं। उन पर मैं अनुरक्त हो गयी

थी। मेरे पिता को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने स्वयं भगवान को बुलाया और मुझे सौंप दिया *(अध्याय 83, श्लोक 15)*। अतः मामा की लड़की, फूफा की लड़की से भी ब्याह होता था।

- **संत ही वास्तविक तीर्थ हैं, मूर्तियाँ व्यर्थ हैं–** वसुदेव के यज्ञोत्सव के उपलक्ष्य में आये द्वैपायन व्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, शिष्यों सहित भगवान परशुराम, वशिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मारकण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रिश, एकत, सनत, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार, अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव इत्यादि महात्माओं के समक्ष श्रीकृष्ण ने कहा– महात्मन्! आप सबका दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ है *(अध्याय 84, श्लोक 9)*। जिन्होंने थोड़ी-बहुत तपस्या की है और जो लोग अपने इष्टदेव को हृदय में न देखकर मूर्ति-विशेष में देखते थे, उन्हें आप संतों के दर्शन, स्पर्श, कुशल-प्रश्न, प्रणाम और पाद-पूजन का सुअवसर भला कब मिल सकता है! *(अध्याय 84, श्लोक 10)*

केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते और केवल मिट्‌टी और पत्थर की प्रतिमाएँ ही देवता नहीं होतीं। संतपुरुष ही वास्तव में तीर्थ और देवता हैं। तीर्थों और मूर्तियों का बहुत समय तक सेवन किया जाय तब वे पवित्र करते हैं परन्तु सन्तपुरुष तो दर्शन मात्र से ही कृतार्थ कर देते हैं। *(अध्याय 84, श्लोक 11)*

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, वाणी और मन के देवता उपासना करने पर भी पाप का पूरा-पूरा नाश नहीं कर सकते क्योंकि उनकी उपासना से भेद-बुद्धि का नाश नहीं होता, वह और भी बढ़ती है परन्तु एक घड़ी-दो घड़ी भी ज्ञानी महापुरुषों की सेवा की जाय तो वे सारे पाप-ताप मिटा देते हैं क्योंकि वे भेद-बुद्धि के विनाशक हैं।

महात्माओं और सभासदो! जो मनुष्य वात, पित्त और कफ – इन तीन धातुओं से बने शवतुल्य शरीर को ही आत्मा, स्त्री-पुत्र आदि को ही अपना, मिट्‌टी-पत्थर-काष्ठ आदि पार्थिव विकारों को ही इष्टदेव मानता है, तथा जो केवल जल को ही तीर्थ समझता है, ज्ञानी महापुरुषों को नहीं, वह मनुष्य होने पर भी पशुओं में भी नीच गधा ही है *(अध्याय 84, श्लोक 13)*। अतः मूर्तिपूजकों को संतों का दर्शन नहीं होता। होता भी है तो लाभ नहीं होता। वास्तविक तीर्थ संत हैं। मूर्तिपूजक पशु हैं। विशेष बात यह है कि श्रीकृष्ण ने यह उपदेश स्वयं दिया, तीर्थ में दिया और समाज के बीच दिया था। श्रीकृष्ण ने मूर्तिपूजा की निन्दा की लेकिन लोगों ने श्रीकृष्ण की भी मूर्ति बना ली। बुद्ध ने विरोध किया तो उनकी भी मूर्ति गढ़ ली।

- **मूर्तिपूजा बाधा है–** भगवान श्रीकृष्ण अपने प्रिय भक्त विदेहराज बहुलाश्व और गृहस्थ ब्राह्मण श्रुतिदेव के यहाँ नारद, वामदेव, अग्नि, अत्रि, व्यास, परशुराम, असित, आरुणि, शुकदेव, बृहस्पति, कण्व, च्यवन और मैत्रेय ऋषियों के साथ दर्शन देने गये। श्रुतिदेव ने भगवान की स्तुति करते हुए कहा– भगवन्! जिन लोगों का चित्त लौकिक, वैदिक आदि कर्मों की वासना से बहिर्मुख हो रहा है, उनके हृदय में रहने पर भी आप उनसे बहुत दूर हैं किन्तु जिन लोगों ने आपका गुणानुवाद करके अपने अन्तःकरण को सद्‌गुण-सम्पन्न बना लिया है, उनके लिए चित्तवृत्तियों से अग्राह्य होने पर भी आप अत्यन्त निकट हैं *(अध्याय 86, श्लोक 47)*। स्पष्ट है कि भगवान का निवास हृदय है।

भगवान ने कहा– प्रिय श्रुतदेव! ये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तुम पर अनुग्रह करने के लिए ही यहाँ पधारे हैं। ये अपने चरण-कमलों की धूलि से लोगों और लोकों को पवित्र करते हुए मेरे साथ विचरण कर रहे हैं *(अध्याय 86, श्लोक 51)*। देवता पुण्यक्षेत्र, और तीर्थ आदि तो दर्शन-स्पर्श-अर्चन आदि के द्वारा धीरे-धीरे बहुत दिनों में पवित्र करते हैं परन्तु

संतपुरुष अपनी दृष्टि से ही सबको पवित्र कर देते हैं। यहीं नहीं, देवता आदि में जो पवित्र करने की शक्ति है, वह भी उन्हें सन्तों की दृष्टि से ही प्राप्त होती है। *(अध्याय 86, श्लोक 52)*

श्रुतदेव! जगत में ब्राह्मण जन्म से ही सब प्राणियों से श्रेष्ठ है। यदि वह तपस्या, विद्या, संतोष, मेरी उपासना और मेरी भक्ति से संयुक्त हो तब तो कहना ही क्या! *(अध्याय 86, श्लोक 53)* मुझे अपना यह चतुर्भुज रूप भी ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक प्रिय नहीं है क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और मैं सर्वदेवमय हूँ। *(अध्याय 86, श्लोक 54)*

दुर्बुद्धि मनुष्य इस बात को न जानकर केवल मूर्ति आदि में ही पूज्य बुद्धि रखते हैं और गुणों में दोष निकालकर मेरे स्वरूप जगतगुरु ब्राह्मण का, जो कि उनका आत्मा ही है, तिरस्कार करते हैं *(अध्याय 86, श्लोक 55)*। ब्राह्मण मेरा साक्षात् करके जान लेता है कि जगत आत्मस्वरूप भगवान का ही रूप है *(अध्याय 86, श्लोक 56)*। अतः श्रुतदेव! तुम इन ब्रह्मर्षियों को मेरा स्वरूप समझकर पूरी श्रद्धा से इनकी पूजा करो। यदि तुम ऐसा करोगे तब तो तुमने साक्षात् अनायास ही मेरा पूजन कर लिया, नहीं तो बड़ी-बड़ी बहुमूल्य सामग्रियों से भी मेरी पूजा नहीं हो सकती *(अध्याय 86, श्लोक 57)*।

श्रुतदेव ने भगवान श्रीकृष्ण और उन ब्रह्मर्षियों की एकात्म भाव से आराधना की तथा उनकी कृपा से वे भगवद्स्वरूप को प्राप्त हो गये। *(अध्याय 86, श्लोक 58)*

नोट– 1. शरीर तो एक वस्त्र है। *'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय.....'* *(गीता, 2/22)*। ब्राह्मण एक जागृति है। ब्राह्मण का जन्म उस दिन होता है जब भजन ब्रह्म के निर्देशन में चलने लगता है।

2. ब्राह्मण, संत और ब्रह्मर्षि पर्यायवाची हैं। कृष्ण के साथ जो गये थे, वे महात्मा सामाजिक वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से ब्राह्मण नहीं

थे। वे क्रियात्मक चलकर ब्रह्म की अनुभूतिवाले ब्राह्मण थे जहाँ पहुँचकर आदि शंकराचार्य कहते हैं– *'न ब्राह्मण न क्षत्रिय न वैश्यं न शूद्रं। चिदानन्दरूपो शिवो केवलोऽहम्।।'* जबकि आचार्य शंकर ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे।

नारायण ऋषि ने नारद जी को बताया कि श्रुतियाँ भगवान का यशोगान करके उन्हें जगाती हैं। वे कहती हैं कि प्रभो! जगत में जितनी भी साधना, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियाँ हैं उन सबको जगानेवाले आप ही हैं। *(अध्याय 87, श्लोक 14)*

जो लोग एक परमात्मा से विमुख हैं, वे चाहे जितने बड़े विद्वान हों, अन्य कर्मों का प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियाँ उन्हें पशुओं के समान बाँध लेती हैं। इसके विपरीत जिन्होंने प्रभु के साथ प्रेम का सम्बन्ध जोड़ रखा है, वे न केवल अपने को बल्कि दूसरों को भी पवित्र कर देते हैं, जगत के सम्बन्ध से छुड़ा देते हैं। *(अध्याय 87, श्लोक 27)*

भगवन्! जो ऐश्वर्य, धन, विद्या, जाति, तपस्या आदि के घमण्ड से रहित हैं वे सन्त पुरुष इस पृथ्वी तल पर परम पवित्र और सबको पवित्र करनेवाले पुण्यमय सच्चे तीर्थस्थान हैं *(अध्याय 87, श्लोक 35)*। यही रामचरितमानस में है–

जाति पाँति धनु धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई।।

- **यदुवंशियों के अध्यापक–** यदुवंशी बालकों को शिक्षा देने के लिए तीन करोड़ अट्ठासी लाख आचार्य थे। *(अध्याय 90, श्लोक 41)*

❖ ❖ ❖

एकादश स्कन्ध

- **यदुवंशियों को ब्राह्मण का श्राप–** विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ, नारद जैसे ब्राह्मणों (?) ने यदुवंश के उदण्ड बालकों को श्राप दिया *(अध्याय 1, श्लोक 12)*। अतः ब्राह्मण अर्थात् ऋषि।

- **गुरु से ही भगवान की पूजा–** भगवान ऋषभदेव के सौ पुत्रों में भरत महाराजा तथा शेष निन्यानबे पुत्रों में से नौ अन्य राज्यों के संस्थापक, इक्यासी कर्मकाण्डी ब्राह्मण और नौ संन्यासी योगेश्वर हुए। वे विदेहराज निमि के यज्ञ में गये। उनमें से योगेश्वर कवि ने परम कल्याण के स्वरूप का उपदेश करते हुए कहा कि अपने गुरु को ही आराध्य देव, परम प्रियतम मानकर अनन्य भक्ति के द्वारा ईश्वर का भजन करना चाहिए। *(अध्याय 2, श्लोक 37)*

- **स्वर्ग कर्मों का फल नहीं, भुलावा है–** कर्मों का शुद्ध परिणाम कर्मों की निवृत्ति से मिलने वाला परम ज्ञान ही है। *(अध्याय 3)*

- **गुरु इष्ट है–** जो परम कल्याण का जिज्ञासु है उसे गुरुदेव की शरण लेनी चाहिए। जिज्ञासु को चाहिए कि गुरु को ही अपना परम प्रियतम आत्मा और इष्टदेव माने। उनकी निष्कपट भाव से सेवा करे और उनके पास रहकर भागवत-धर्म अर्थात् भगवान को प्राप्त करानेवाले भक्तिभाव के साधनों की क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे। *(अध्याय 3, श्लोक 21–22)*

- **ब्राह्मण–** एक बार धर्म के मर्मज्ञ राजा यदु ने एक त्रिकालदर्शी अवधूत ब्राह्मण को देखा और पूछा– आप जड़, उन्मत्त अथवा पिशाच के समान रहते हैं, न कुछ करते हैं और न चाहते हैं। आप सदा सर्वदा अपने स्वरूप में रहते हैं। ब्रह्मन! आत्मा में ही आनन्द का अनुभव कैसे होता है?

इस पर दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु बताये– पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग (मधुमक्खी), हाथी, शहद निकालनेवाला, हरिन, मछली, पिंगला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मकड़ी *(अध्याय 7, श्लोक 33–34)*। इन चौबीसों में दुर्गुणों की कमी नहीं है परन्तु दत्तात्रेय की तरह हर साधक को चाहिए कि सबमें गुण देखे। विकारों से उसे क्या प्रयोजन? गुण छाँटकर ले ले। दत्तात्रेय ने इनका गुण सीखा, न कि गुरु बनाकर उनकी पूजा करने लगे।

- **गुरु-सेवा ही भगवत्प्राप्ति का आधार–** श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि जिज्ञासु पुरुष के लिए यम और नियमों के पालन से बढ़कर आवश्यक बात यह है कि वह अपने गुरु की, जो मेरे स्वरूप को जाननेवाले हों, मेरा ही स्वरूप समझकर उनकी सेवा करे। *(अध्याय 10, श्लोक 5)*

- **ऊधव! पृथ्वी पर मत रहना–** श्रीकृष्ण ने कहा– यह यदुवंश ब्राह्मणों के श्राप से जल चुका है, कलह और युद्ध से नष्ट हो जायेगा। आज से सातवें दिन यह समुद्र इस द्वारकापुरी को डुबो देगा। मेरे शरीर-त्याग के साथ ही पृथ्वी पर कलियुग आ जायेगा तब तुम इस पर मत रहना। अनन्य प्रेम से मुझमें मन लगाकर समदृष्टि से स्वच्छन्द विचरण करना। *(अध्याय 7, श्लोक 3–6)*

  वस्तुतः जो सब ओर से चित्त को समेटकर परमात्मा के चिन्तन में निरोध कर लेता है वह पुरुष इस पृथ्वी पर रहते हुए भी नहीं रहता क्योंकि वह परमात्मा में समाहित हो जाता है। गीता में भी कहा है– *'इहैव तैर्जितः सर्गो'*।

- **सभी प्रकार के जीव सत्संग से ईश्वर को पाते हैं–** दैत्य, राक्षस, पशु, पक्षी, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर और

मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री, असुरों में वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय, दानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, ब्रज की गोपियाँ, यज्ञ-पत्नियाँ और दूसरे लोग भी सत्संग के प्रभाव से मुझे प्राप्त कर सके हैं। *(अध्याय 12, श्लोक 3–6, 13)*

- **ईश्वर एक है–** प्रिय उद्धव! वास्तव में मैं एक ही हूँ। यह मेरा अनेकों प्रकार का रूप केवल मायामय है। जो इस बात को गुरुओं के द्वारा समझ लेता है, वही वास्तव में सभी वेदों के रहस्य को जानता है। अतः उद्धव! तुम इस प्रकार गुरुदेव की अनन्य भक्ति के द्वारा अपने ज्ञान की कुल्हाड़ी तीखी कर लो और उसके द्वारा सावधानी से जीव भाव को काट डालो, फिर परमात्म-स्वरूप होकर उस वृत्तिरूप अस्त्रों को भी छोड़ दो और अपने अखण्ड स्वरूप में ही स्थित रहो। *(अध्याय 12, श्लोक 23–24)*

- **संयम–** जो साधक बुद्धि के द्वारा वाणी, मन और इन्द्रियों को वश में नहीं कर लेता, उसके व्रत, दान और तप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे कच्चे घड़े में पानी। *(अध्याय 16, श्लोक 43)*

- **वर्णों की पहचान–** ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की पहचान उनके स्वाभावानुसार आचरण से होती है *(अध्याय 17, श्लोक 13)*; शरीर के जन्म से नहीं।

- **महात्माओं द्वारा दण्ड-धारण–** वाणी के लिए मौन, शरीर के लिए निष्चेष्ट स्थिति और मन के लिए प्राणायाम – जिनके पास तीनों दण्ड नहीं हैं तो केवल बात के दण्ड धारण करने से वह संन्यासी दण्डी स्वामी नहीं हो सकता *(अध्याय 18, श्लोक 17–18)*। संन्यासी को चाहिए कि जातिच्युत पतितों को छोड़कर चार वर्णों की भिक्षा ले। विचार करें– क्या चार वर्णों के बाहर जातिच्युत हैं?, क्या ब्राह्मण कहे जाने वाले नारद आदि महात्मा जातिच्युत नहीं थे?

उद्धव के प्रश्न और श्रीकृष्ण के उत्तर– *(अध्याय 19)*

1– यम क्या हैं?

उत्तर– यम बारह हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंचय, ब्रह्मचर्य, असंग, लज्जा, आस्तिकता, मौन, स्थिरता, क्षमा, अभय।

2– नियम क्या है?

उत्तर– शौच, जप, तप, हवन, श्रद्धा, अतिथि-सेवा, मेरी पूजा, परोपकार, संतोष, गुरुसेवा।

3– शम क्या है?

उत्तर– बुद्धि का मुझमें लग जाना ही शम है।

4– दम ?

उत्तर– इन्द्रियों का दमन दम है।

5– तितिक्षा ?

उत्तर– वैराग्य में त्याग का नाम तितिक्षा है।

6– धैर्य ?

उत्तर– जिह्वा और जननेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना धैर्य है।

7– दान ?

उत्तर– किसी से द्रोह न करना, अभय देना दान है।

8– तप ?

उत्तर– कामनाओं का त्याग ही तप है।

9– धन ?

उत्तर– धर्म ही मनुष्य का अभीष्ट धन है।

10– यज्ञ ?

उत्तर– मैं परमेश्वर ही यज्ञ हूँ।

11– शूरता ?

उत्तर– वासनाओं पर विजय शूरता है।

12– सत्य ?

उत्तर– सत्यस्वरूप परमात्मा को सर्वत्र देखने का अभ्यास।

13– दक्षिणा ?

उत्तर– ज्ञान का उपदेश देना ही दक्षिणा है।

14– सच्चा बल ?

उत्तर– प्राणायाम ही श्रेष्ठ बल है।

15– लाभ ?

उत्तर– मेरी श्रेष्ठ भक्ति ही उत्तम लाभ है।

16– उत्तम विद्या ?

उत्तर– जिससे ब्रह्म और आत्मा का भेद मिट जाता है।

17– लज्जा ?

उत्तर– पाप करने से घृणा का नाम लज्जा है।

18– श्री ?

उत्तर– निरपेक्षता आदि गुण ही शरीर का सच्चा सौन्दर्य 'श्री' है।

19– सुख ?

उत्तर– दुःख और सुख की भावना का सदा के लिए नष्ट होना सुख है।

20– दुःख ?

उत्तर– विषयभोगों की कामना ही दुःख है।

21– पण्डित ?

उत्तर– जो बन्धन और मोक्ष का तत्व जानता है, वही पण्डित है।

22– मूर्ख ?

उत्तर– शरीर आदि में मयपन रखनेवाला ही मूर्ख है।

23– सुमार्ग ?

उत्तर– जो संसार से निवृत्त कर मुझे प्राप्त करा देता है।

24– कुमार्ग ?

उत्तर– चित्त की बहिर्मुखता ही कुमार्ग है।

25– स्वर्ग ?

उत्तर– सत्त्वगुण की वृद्धि ही स्वर्ग है।

26– नरक ?

उत्तर– तमोगुण की वृद्धि ही नरक है।

27– भाई-बन्धु ?

उत्तर– गुरु ही सच्चा भाई-बन्धु है और वह गुरु मैं हूँ।

28– कृपण ?

उत्तर– जो जितेन्द्रिय नहीं है, वही कृपण है।

29– ईश्वर ?

उत्तर– समर्थ, स्वतन्त्र ईश्वर वह है जिसकी चित्तवृत्ति विषयों में आसक्त नहीं है।

30– असमर्थ ?

उत्तर– विषयों में आसक्त असमर्थ है।

31– दोष ?

उत्तर– गुण-दोषों पर दृष्टि जाना दोष है।

32– गुण ?

***उत्तर*–** गुण-दोष पर दृष्टि न डालकर शान्त, निःसंकल्प स्वरूप में स्थित रहना सबसे बड़ा गुण है।

33– संन्यास ?

***उत्तर*–** कामनाओं का त्याग सच्चा संन्यास है।

34– ऋत ?

***उत्तर*–** मधुर भाषण ऋत है।

35– धनवान ?

***उत्तर*–** जिसके पास गुणों का खजाना है।

36– निर्धन ?

***उत्तर*–** जिसके चित्त में असंतोष है, अभाव का बोध है वही निर्धन है।

37– भग ?

***उत्तर*–** मेरा ऐश्वर्य ही भग है।

- **वेद–** भगवान की वाणी, आज्ञा वेद है। *(अध्याय 20, श्लोक 1, 3)*
- **संन्यासी के लिए स्त्री-निषेध–** गृहस्थों के लिए स्वाभाविक होने के कारण अपनी पत्नी का संग पाप नहीं है परन्तु संन्यासी के लिए घोर पाप है। गृहस्थ जो नीचे सोया है, वह गिरेगा कहाँ; क्योंकि जो पहले से ही पतित है, उनका अब और पतन क्या होगा? *(अध्याय 21, श्लोक 17)*
- **वेद का निचोड़–** श्रुतियाँ सभी मुझमें लय होती हैं। इसके अतिरिक्त बताती हैं तो वह वेद नहीं, श्रुति नहीं। *(अध्याय 21, श्लोक 43)*
- **योग क्या है?–** दान, अपने धर्म का पालन, नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्यादि व्रत – इन सबका अन्तिम फल यहीं है कि मन एकाग्र हो जाय, मन वश में हो जाय। मन का समाहित हो जाना ही परम योग है। यही योग का सारांश है। *(अध्याय 23, श्लोक 6)*

- **बाहर कोई शत्रु नहीं–** सुख-दुःख का कारण यदि मनुष्य है तो आपकी आत्मा से उसका क्या सम्बन्ध! क्योंकि सुख-दुःख पहुँचानेवाला भी मिट्टी का शरीर और भोगनेवाला भी मिट्टी का ही शरीर है। यदि देवता सुख-दुःख देते हैं तो आपकी इन्द्रियों में रहनेवाले देवता सुख-दुःख पाते हैं। कर्म या ग्रह देते हैं तब भी आत्मा सुख–दुःख का भोक्ता नहीं है। अतः किसी पर क्रोध न करें। सुख-दुःख चित्त का भ्रम मात्र है। *(अध्याय 23, श्लोक 43, 51)*

- **संत एकमात्र आश्रय–** भगवान कहते हैं– मैं साक्षात् परब्रह्म हूँ। जिसे मेरी भक्ति मिल गई, वह तो संत हो गया। अब उसे कुछ भी पाना शेष नहीं है। जो इस घोर संसार-सागर में डूब-उतरा रहे हैं, उनके लिए ब्रह्मवेत्ता और शान्त संत ही एकमात्र आश्रय हैं। *(अध्याय 26, श्लोक 30, 32)*

- **ब्रह्मविद्या का रहस्य–** एक मुझ परमात्मा का चिन्तन करना और किसी पदार्थ की इच्छा न करना – यही ब्रह्मविद्या का रहस्य है। प्रत्येक जीव को मेरे समान समझकर प्रणाम करें। इससे ईर्ष्या, स्पर्धा, अभिमान, राग-द्वेष समाप्त हो जाते हैं। किसी के छींटाकशी की परवाह न कर चित्त को मुझ परमात्मा में लगाता जाय, यही भागवत धर्म का और ब्रह्मविद्या का स्पष्ट रहस्य है।

- **श्रीकृष्ण योगेश्वर–** श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा– जैसे सूर्य आकाश में उदय होकर लोगों को जगत तथा अपने को देखने के लिए नेत्र प्रदान करता है, वैसे ही सन्त पुरुष अपने को तथा भगवान को देखने के लिए अन्तर्दृष्टि देते हैं। संत अनुग्रहशील देवता हैं। संत अपने हितैषी सुहृद हैं, संत अपने प्रियतम आत्मा हैं। और अधिक क्या कहूँ, स्वयं मैं भी संत के रूप में विद्यमान हूँ। *(अध्याय 26, श्लोक 34)* अर्थात् श्रीकृष्ण के ही शब्दों में वह एक योगेश्वर हैं, संत हैं, सद्गुरु हैं।

❖ ❖ ❖

द्वादश स्कन्ध

- **भागवत का सारांश–** महापुराण भागवत की समाप्ति पर शुकदेव ने परीक्षित से कहा कि मैंने जो भागवत सुनाया है उसमें एक परमात्मा का गायन हुआ है। यहाँ तक कि सम्पूर्ण देवता, ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भी उस परमात्मा के अन्तर्गत हैं। उनसे बाहर कुछ भी नहीं है *(अध्याय 5, श्लोक 1)*। इसलिए एक परमात्मा की पूजा और एक परमात्मा की प्राप्ति ही भागवत का उद्देश्य है, सारांश है।

- **प्रलय–** शौनकादि ऋषियों ने सूत जी से पूछा कि मृकण्ड ऋषि के पुत्र मारकण्डेय जी ने दीर्घायु के बाद प्रलय में देखा कि सारी सृष्टि जलमग्न हो गयी थी। बरगद के पत्ते पर भगवान को उन्होंने देखा किन्तु मारकण्डेय हमारे ही कुल में पैदा हुए थे। उनके जन्म के बाद कोई प्रलय हुआ नहीं।

  सूत जी ने बताया कि मारकण्डेय की प्रार्थना पर प्रसन्न होकर नर-नारायण आये। मारकण्डेय जी ने उनकी माया देखनी चाही। वह पुष्पभद्रा नदी के तट पर ध्यानस्थ होकर बैठे थे। सहसा उन्होंने समुद्र की लहरों को चारों ओर से आते और अपने को मगरों से बचते देखा। कई बार लगा कि वे स्वयं मर गये। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा – सब उस जल में डूबते दिखाई पड़े। बरगद के पत्ते पर उन्हें एक शिशु दिखाई पड़ा। वे श्वास के साथ उस शिशु के पेट में चले गये और सम्पूर्ण सृष्टि, सूर्य, चन्द्र सबको जीवित पाया। फिर प्रश्वास के साथ वे बाहर आये और प्रलयकालीन समुद्र में गिर गये। जब आँख खुली तो मारकण्डेय जी ने अपने को अपने आश्रम और आसन पर बैठे हुए पाया। *(अध्याय 9)*

  स्पष्ट है कि दीर्घकालीन भजन के पश्चात् उन्हें ईश्वरीय दृश्य अनुभव में, समाधि में, हृदय में दिखाई पड़ा था; बाहर प्रलय नहीं हुआ था। कागभुसुण्डि जी ने भी राम के उदर में अनन्त सृष्टि देखी थी पर

अन्त में कहा कि दो घड़ी में मैंने यह सब देखा था। यह भजन की पूर्तिकाल में अन्तःकरण में भगवान द्वारा दर्शाया गया अनुभव था।

- **धर्म का गुह्यतम रहस्य–** शंकर जी ने मारकण्डेय जी से कहा कि बड़े से बड़े महापापी तुम्हारे जैसे महापुरुषों के चरित्र-श्रवण व दर्शन मात्र से पवित्र हो जाते हैं। सूत ने कहा– शौनक! भगवान शंकर की एक-एक बात धर्म के गुह्यतम रहस्य से परिपूर्ण थी *(अध्याय 10, श्लोक 23, 25)*। कौन-सी बात? यही कि महापुरुषों का दर्शन करो, उसी से कल्याण है।
- **भगवान की पूजा–** अपने समस्त पापों का नाश कर देना ही भगवान की पूजा है। *(अध्याय 11, श्लोक 17)*

इसी प्रकार चिन्तन-मनन करते रहने से आप श्रीमद्भागवत के रहस्यों तक पहुँचते जायेंगे।

❖ ❖ ❖

श्रेष्ठ कौन? गीता या श्रीमद्भागवत?

प्रश्न– *श्री परमहंस आश्रम, पालघर, महाराष्ट्र में प्रयागराज से पधारे श्रद्धालु भक्तों ने श्रीमद्भागवत के साधनात्मक सूत्र पढ़कर महाराज जी से निवेदन किया कि पद्म पुराण, उत्तर खण्ड में श्रीमद्भागवत महात्म्य के दूसरे अध्याय में है कि भक्ति देवी का दुःख दूर करने के लिए नारद जी ने उनके निर्बल और जराजीर्ण पुत्रों ज्ञान और वैराग्य के कान के पास मुँह लगाकर वेदध्वनि, वेदान्त और बार-बार गीता पाठ करके उन्हें बहुत जगाया किन्तु वे नहीं जगे। (अध्याय 2, श्लोक 27, 39, 64) वेद–वेदान्त के पारगामी और गीता की भी रचना करने वाले व्यास जी अशान्त थे। उनको भी श्रीमद्भागवत की रचना से ही शान्ति मिली। (अध्याय 2, श्लोक 72, 73)*

इसी पुराण के चौथे एवं पाँचवें अध्याय में गोकर्ण और धुन्धुकारी की कथा है जिनका उद्धार श्रीमद्भागवत-श्रवण से हुआ। शुकदेव जी ने महाराजा परीक्षित को गीता के स्थान पर श्रीमद्भागवत ही सुनाया जिससे प्रतीत होता है कि श्रीमद्भागवत का महत्व गीता से अधिक है।

उत्तर– *महाराज जी ने कहा कि–*

आपका प्रश्न उचित है। चारों वेद, ब्रह्मसूत्र, महाभारत और गीता इत्यादि सब कुछ लिख देने के बाद भी वेदव्यास अपने को अपूर्ण मानकर खिन्न हो रहे थे तब देवर्षि नारद ने उनसे कहा कि जो महापुरुष भगवत्ता की प्राप्ति कर चुके हैं, ऐसे महापुरुषों का चरित्र आप लिखिए। इस पर व्यास जी ने भागवत लिखा। उनका अज्ञान दूर हो गया और उनको शान्ति मिली।

वस्तुतः विरक्त महात्माजन शास्त्रीय सिद्धान्तों की प्रयोगशाला होते हैं। शास्त्र में लिखित विधि-विधान पर स्वयं चलकर वे साधना के सूक्ष्म आरोह-अवरोह से परिचित होते हैं। वे साधकों के लिए आलोक-स्तम्भ होते हैं जिनसे प्रेरणा लेकर उन्हीं के मार्गदर्शन में साधना के क्रमिक स्तरों से होकर साधक

परमपदपर्यन्त दूरी तय कर लेता है। गीता और भागवत में कोई बड़ा या छोटा नहीं है। गीता शास्त्रीय सिद्धान्त है तो भागवत अर्थात् परमहंस महात्माओं का समग्र जीवन उसी का क्रियात्मक अनुशीलन है। गीता और भागवत एक ही सिक्के दो पहलू जैसे हैं। गीता में भगवान कहते हैं–

अहं सर्वस्व प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव समन्विताः।। *(गीता, 10/8)*

मैं ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूँ, भरण-पोषण और परिवर्तन हूँ इसलिए मुझसे ही सम्पूर्ण जगत चेष्टा अर्थात् कुछ पाने की इच्छा करता है। ऐसा मानकर श्रद्धा, भक्ति से युक्त विवेकीजन मेरा निरन्तर भजन करते हैं। वे भजन कैसे करते हैं? तो–

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।। *(गीता, 10/9)*

अन्य किसी को स्थान न देकर वे केवल मुझमें ही निरन्तर चित्त को लगाने वाले, मुझमें ही प्राणों अर्थात् अन्तःकरण को लगाने वाले, सदैव मेरी ही चर्चा और मेरी प्रक्रियाओं का बोध कराते रहते हैं तथा इस प्रकार निरन्तर मुझमें ही रमण करते रहते हैं। अभी उन्होंने न नाम जपा, न रूप देखा कि भगवान ऐसे.... वहाँ जन्मे.... वहाँ उनका उद्धार किया.... वहाँ उस असुर को मारा.... यह गुणानुवाद हैं। मुझमें ही निरन्तर चित्त को लगाने वाले, मुझमें ही प्राण, अन्तःकरण को लगाने वाले, सदैव मेरी चर्चा, मेरी प्रक्रियाओं का बोध परस्पर कराते रहते हैं। इस प्रकार निरन्तर मुझमें ही रमण करते हैं। बस इतना ही भजन है।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।। *(गीता, 10/10)*

इस प्रकार कि भगवान कहाँ जन्मे, क्या किया, किसका उद्धार किया, किस असुर को मारा.... केवल गुणानुवाद द्वारा निरन्तर मेरे ध्यान, स्मरण में

लगे हुए, प्रेमपूर्वक भजने वाले उन भक्तों को मैं बुद्धियोग देता हूँ अर्थात् योग में प्रवेश करने वाली बुद्धि मैं देता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि भजन एक जागृति है। यदि भगवान हृदय से प्रेरणा न करें तो भवसागर से निवृत्ति दिला देने वाला भजन हृदय में जागृत होता ही नहीं। अतः योग की जागृति सद्गुरु की, ईश्वर की देन है। वह अव्यक्त पुरुष योग में प्रवेश दिला देने वाली बुद्धि कैसे देते हैं?

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।। *(गीता, 10/11)*

उनके ऊपर पूर्ण अनुग्रह करने के लिए मैं उनकी आत्मा से अभिन्न खड़ा होकर, हृदय से रथी होकर, अज्ञान से उत्पन्न अंधकार को ज्ञानरूपी दीपक के द्वारा प्रकाशित कर नष्ट करता हूँ। भजन एक जागृति है जो सद्गुरु के द्वारा है। वस्तुतः किसी महापुरुष द्वारा जब तक वह परमात्मा आपकी आत्मा से ही जागृत होकर पग-पग पर संचालन नहीं करता, रोकथाम नहीं करता, इस प्रकृति के द्वन्द्व से निकालते हुए स्वयं आगे नहीं ले जाता, तब तक वास्तविक भजन प्रारम्भ ही नहीं होता।

परमहंस संहिता श्रीमद्भागवत का संदेश केवल इतना ही है कि भजन एक जागृति है जो सद्गुरु के द्वारा ही सम्भव है। केवल शास्त्र पढ़ने से क्या होगा? उसका उपयोग तो तब है जब सद्गुरु की शरण मिले। सद्गुरु की क्या पहचान है?, उनकी रहनी क्या है?, उनका गोत्र क्या है?, उनका कुल क्या है?–ऐसे परमहंस महापुरुषों का जीवन-चरित्र लिखने पर वेदव्यास जी को शान्ति मिली।

तत्वदर्शी महापुरुष के शरण-सान्निध्य से भजन जागृत हो जाता है। गुरु महाराज कहा करते थे– ''हो, दो–दो पैसे में वेदान्त बिकत है। लोग पढ़त हैं और लिखतौ जात हैं। न जाने का पढ़त हैं और का लिखत हैं! भजन ही एक ऐसी वस्तु है जो लिखने में नहीं आती, वाणी से कहने में नहीं आती।

यह किसी अनुभवी सद्गुरु के द्वारा किसी किसी अनुरागी के हृदय में जागृत हो जाया करती है।''

गीता के आरम्भ में ही भगवान ने कहा–

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ *(गीता, 2/16)*

अर्जुन! सत्य वस्तु का तीनों काल में अभाव नहीं है। वह सदैव एकरस है। उसे मिटाया नहीं जा सकता। असत्य का अस्तित्व नहीं। वह है ही नहीं। कितना भी रोकना चाहो, नहीं रुकेगा, नष्ट हो जायेगा। और इन दोनों का अन्तर तत्वदर्शियों ने देखा। किसने देखा? तत्वदर्शियों ने। परम तत्व है परमात्मा। जिन्होंने उसे विदित किया, उन तत्वदर्शियों ने देखा कि मैं अमूर्त हूँ, अखण्ड हूँ, अजन्मा हूँ। शस्त्र मुझे नहीं काट सकते, अग्नि नहीं जला सकती, वायु नहीं सुखा सकती, आकाश विलय नहीं कर सकता। मैं मृत्यु से परे अमृत तत्व हूँ। इन गुणों से युक्त मेरे इस स्वरूप को तत्वदर्शियों ने देखा। साधना द्वारा चलकर जिसने परमात्मा को विदित कर लिया, वह तत्वदर्शी है। ये तत्वदर्शी महापुरुष, जब तत्व पा ही गये तो भजन किसका करें? जब आगे कोई सत्ता है ही नहीं तो उत्तर कौन देगा? उनके लिए प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है और त्यागने लायक कोई विकार नहीं है। ये महापुरुष जब तक संसार में रहते हैं, लोकहित के लिए विचरण करते हैं। संत कबीर के शब्दों में–

विवेकी सन्त बसहिं जेहि देस।
रिद्धि सिद्धि तहँ टहल करत हैं, दुख न रहत लवलेस। विवेकी०

विवेकी संत जिस देश में बसते हैं, रिद्धि-सिद्धि वहाँ टहल करती है। लवलेश भी दुःख का आभास नहीं होता। इसलिए महाभागवत महापुरुषों का जीवन-चरित्र, उनकी साधना, उनकी रहनी का चित्रण किया तब व्यासजी को शान्ति मिली। क्यों? 'भगवान शाश्वत हैं, अमृत तत्व हैं।' कह देने से क्या

होता है? हमारे उपयोग में भगवान तब हैं जब तत्वदर्शी महापुरुष का वरदहस्त हो।

विवेकी सन्त बसहिं जेहि देस।
रिद्धि सिद्धि तहँ टहल करत हैं, दुख न रहत लवलेस। विवेकी0
मंदाकिनी गोदावरी गंगा सरस्वति बहत हमेस।
धन्य सो ग्राम रुचिर अति पावन अघ न रहत लवलेस। विवेकी0
काम क्रोध मद लोभ मोह तम करि नहिं सकत प्रवेस।
अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष जन पावत सुनि उपदेस। विवेकी0
कहत कबीर संत की महिमा कहि न सकत श्रुति शेष। विवेकी0

संतों का महत्व और उनकी सेवा पर बल देने के लिए ही भागवत की आवश्यकता पड़ी इसलिए भागवत के बिना सब शास्त्र अधूरा। भगवत्ता को प्राप्त हुए संत-सद्गुरु के दर्शन और सेवा के बिना जागृति नहीं, उनके मार्गदर्शन के बिना साधना नहीं। आपके पास वे नहीं हैं तो भगवान भी नहीं।

निष्कर्ष–

शास्त्र तो निःसंदेह गीता ही है किन्तु उसे आचरण में ढालने की विधि परमहंसों के चरण हैं। जब तक किसी विरक्त संत सद्गुरु के संरक्षण में साधना आरम्भ नहीं होगी, तब तक हृदयस्थ ईश्वर की जागृति तथा गीता के आशय से लोग दूर ही रहेंगे।

भागवत (10/86/51) में भगवान ने कहा कि, प्रिय श्रुतदेव! ये अमलात्मा ऋषि-मुनि तुम पर अनुग्रह करने के लिए यहाँ पधारे हैं। इनके चरण-कमलों की धूल से पवित्र हुए बिना मेरी प्राप्ति असंभव है। स्पष्ट है कि गीता की साधना सद्गुरु की कृपा के बिना जागृत ही नहीं होती, इसीलिए इन परमहंसों का जीवन-चरित लिखने से व्यास जी को शान्ति मिली।

॥ ओम् ॥

॥ ॐ ॥

परमहंस संहिता श्रीमद्भागवत का संदेश केवल इतना ही है कि भजन एक जागृति है जो सद्गुरु के द्वारा ही संभव है। केवल शास्त्र पढ़ने से क्या होगा? जब तक परमात्मा किसी विरक्त संत-सद्गुरु द्वारा आपकी आत्मा से ही जागृत होकर पग-पग पर आपका मार्गदर्शन नहीं करता, रोकथाम नहीं करता, प्रकृति के द्वन्द्व से निकालते हुए स्वयं आपको आगे नहीं ले जाता, तब तक वास्तविक भजन आरम्भ ही नहीं होता। 'भगवान शाश्वत हैं', 'अमृत तत्त्व हैं' कह देने से क्या होता है? हमारे उपयोग में भगवान तब हैं जब तत्त्वदर्शी महापुरुष का वरदहस्त हम पर हो। भगवत्ता प्राप्त संत-सद्गुरु के दर्शन और सेवा के बिना भजन की जागृति नहीं, उनके मार्गदर्शन के बिना आपके पास अभी साधना नहीं है इसलिए यदि आपके पास संत-सद्गुरु नहीं हैं तो आपके लिए भगवान भी नहीं हैं।

॥ ॐ ॥

॥ ॐ ॥

परमपूज्य गुरुदेव स्वामी श्री परमानन्द परमहंस जी महाराज अनुसुइया, चित्रकूट कहा करते थे– ''हो... आजकल दो-दो पैसे में वेदान्त बिकत है, (उन दिनों गीता प्रेस गोरखपुर से गीता दो पैसे में मिला करती थी।) लोग पढ़त हैं और लिखतौ जात हैं। न जाने का पढ़त हैं और का लिखत हैं। भजन ही एक ऐसी वस्तु है जो लिखने में नहीं आती, वाणी से कहने में नहीं आती, पढ़ने में नहीं आती। यह किसी अनुभवी सद्‌गुरु के द्वारा किसी-किसी अनुरागी के हृदय में जागृत हो जाया करती है।''

॥ ॐ ॥

हमारे प्रकाशन

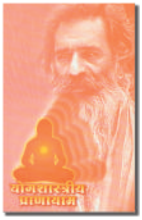

योगशास्त्रीय प्राणायाम –
योगशास्त्रीय प्राणायाम में आपने बताया है कि यम, नियम और आसन के सधते ही श्वास-प्रश्वास का शान्त प्रवाहित होना ही प्राणायाम है। अलग से प्राणायाम नाम की कोई क्रिया नहीं है। यह योग चिन्तन की एक अवस्था है। इसी का समाधान इस पुस्तक में किया गया है।

३ भाषाओं में

बारहमासी –
अपने पूज्य गुरु श्रीपरमानन्द जी महाराज को आकाशवाणी से प्राप्त भजन (ईश्वरीय गायन) बारहमासी का संकलन एवं उसकी व्याख्या की है। इसमें प्रवेशिका से लेकर पराकाष्ठा तक लक्ष्य की ओर बढ़ने का पथप्रदर्शन किया गया है।

हिन्दी भाषा में

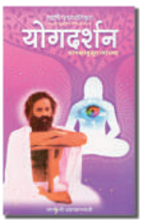

योगदर्शन–
प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या –
महर्षि पतञ्जलिकृत इस पुस्तक में बताया गया है कि 'योग' प्रत्यक्ष दर्शन है यह लिखने या कहने में नहीं आता। क्रियात्मक चलकर ही साधक समझ पाता है कि जो कुछ महर्षि ने लिखा है उसका वास्तविक आशय क्या है? साधनोपयोगी पुस्तक है।

४ भाषाओं में

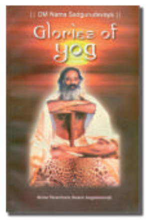

ग्लोरिस आफ योग –
हठ, चक्र, भेदन और योग, प्राणायाम, ध्यान के बारे में पूर्ण परिचय,

अंग्रेजी भाषा में

प्रश्न समाज के–
उत्तर गीता से –
इस पुस्तिका में सामाजिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक कैसे भी प्रश्न हों, उनका गीता के आलोक में समाधान किया गया है।

हिन्दी भाषा में

अहिंसा का स्वरुप –
अहिंसा एक उलझा हुआ प्रश्न है। मूलत: यह यौगिक, आन्तरिक साधना का शब्द है। इस पुस्तक में हम पायेंगे कि हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अहिंसा को किस संदर्भ में लिया है।

४ भाषाओं में

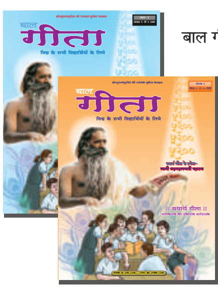

बाल गीता–

यह पुस्तिका बालक के निर्मल मन में एक परमात्मा के प्रति पूर्ण आकर्षण पैदा कर समाज एवं साधना के क्षेत्र में सहज प्रवेश के लिए उपयोगी है। इसमें समर्पण का पाठ्यक्रम अंकित है जिससे बच्चों में धर्म-सन्देश का बीजारोपण, संस्कार पड़ेंगे। वे इस राह पर चलेंगे और अपने ही भगवत्-स्वरूप को प्राप्त कर लेंगे।

४ भाषाओं में

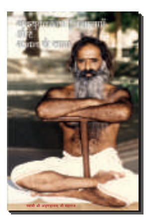

भजन से लाभ (नवयुवकों की जिज्ञासाएँ) –
इस पुस्तिका में नवयुवकों के अनेक प्रश्नों का संक्षेप में समाधान करते हुए भजन की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है। यदि एक परमात्मा में मानसिक स्तर से लगते बन गया तो उन प्रभु के संरक्षण में साधना चलती रहेगी, वाह्य कार्यों में भी मदद मिलेगी और आवागमन से मुक्ति तो मिलना ही है क्योंकि ईश्वर-पथ में आरम्भ का नाश नहीं होता।

हिन्दी भाषा में

MP3 ऑडियो सिडिज्

११ भाषाओं में

श्री स्वामीजी के मुखारविन्द से नि:सृत अमृतवाणियों का संकलन वाल्यूम १ से ६० तक।

हिन्दी भाषा में

निवेदन

श्रीमद्भावगत के कथाप्रेमियों को जानने का प्रयास करना चाहिए कि श्रीमद्भागवत का नाम परमहंस संहिता क्यों है! इस विलक्षण ग्रन्थ के रहस्यों को जानने के लिए; वेदव्यास को जिन महात्माओं के चरित्र-चित्रण से शान्ति मिली, उनके उपदेश क्या थे?, वेदव्यास और भगवान श्रीकृष्ण के शत प्रतिशत उपदेशों की यथावत् जानकारी के लिए इस पुस्तिका का अध्ययन-मनन करें। भागवत के कथावाचकों को इसका अनुशीलन अति आवश्यक है, तत्पश्चात् ही कथा कहनी चाहिए जिससे आप सबके मुखारबिन्द से साधनात्मक सत्य उद्घाटित होता चला जाय। दिशा मिल जाने से इसके छिपे रहस्य आप सबके स्मृति-पटल पर उभरते चले जायेंगे।

भगवान व्यास द्वारा लिपिबद्ध तथा परमहंस शुकदेव जी द्वारा महाराजा परीक्षित को कथा सुनाने से लेकर सूत जी द्वारा शौनकादि ऋषियों से आज तक हजारों वर्षों की परम्परा से सुनाई जा रही यह कथा केवल भौतिक व्याख्या प्रधान बनकर रह गयी है। भौतिकवाद और लौकिक रुचि वाली कथा का ही प्रचलन है। कथा के मूल तथ्य, कल्याणकारी अंश जो छूटते जा रहे हैं, उसको सँभालने के लिए परमहंस संहिता श्रीमद्भागवत के साधनापरक इन सूत्रों को दो-चार बार अवश्य देख लेना चाहिए। इससे आपके द्वारा जनता को सत्य संदेश किसी न किसी मात्रा में मिलने लगेगा और आप सत्य-प्रसारण करनेवाले वक्ता होंगे।

॥ ओम् ॥

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं. ५, मोगरा लेन
(रेल्वे सब-वे के पास), अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत
दुरध्वनी - ०२२-२८२५५३००
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com ● **वेबसाइट** - www.yatharthgeeta.com